श्रुति-शतक

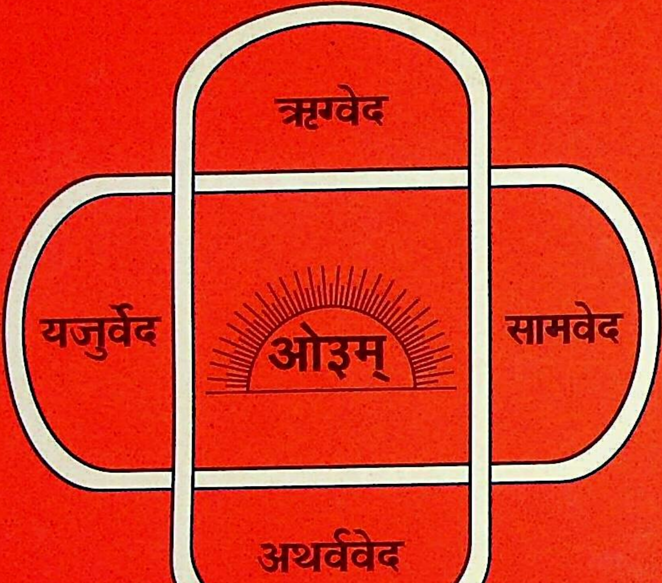

मूल्य - 51 रूपये

लेखक :
वेदप्रकाश शास्त्री
एम.ए.(संस्कृत), एम.ए.(हिन्दी)
(सेवा-निवृत्त प्रधानाचार्य)

ओ३म्

श्रुति-शतक

[illegible]

[illegible]

[illegible]
[illegible]
[illegible]

ओ३म्

श्रुति-शतक

(एक सौ एक वेदमन्त्रों का अन्वयसहित सरलार्थ और पद्यानुवाद)

प्रथम पुष्प

वेदप्रकाश शास्त्री

एम.ए. (संस्कृत), एम.ए. (हिन्दी)

(सेवा-निवृत्त प्रधानाचार्य)

लेखक :
वेदप्रकाश शास्त्री
एम.ए. (संस्कृत), एम.ए. (हिन्दी)
(सेवा-निवृत्त प्रधानाचार्य)

प्रकाशक :
श्री बिशननारायण मुखी मेमोरियल-केन्द्र
आई-127, कीर्तिनगर,
नई दिल्ली-110015

मुद्रक :-
एम के प्रिंटर्स
एफ-75, कीर्तिनगर,
नई दिल्ली-110015
दूरभाष : 5465897

पूर्वकथन

श्रुति–शतक एक सौ एक मन्त्रों का संग्रह है। वेद उदात्त भावनाओं और प्रेरणाओं के भण्डार हैं। विश्व में सभी विद्याओं और विज्ञानों के मूल स्रोत वेद ही हैं; यहाँ तक कि विश्व की सभी भाषाओं का भी मूलतः उद्गम वेदों से ही हुआ। इस तथ्य के होते हुए भी 'ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्' मन्त्र के अनुसार वैदिक मन्त्रों का परम उद्देश्य प्रभु कीं प्राप्ति है और प्रभु के प्रति प्रेम, भक्ति और निष्ठा उत्पन्न करनेवाले वेदमन्त्र सहस्रों हैं। उनमें से इस संग्रह में केवल 101 मन्त्र ही रखे गये हैं। कौन–सा मंत्र अधिक महत्त्वपूर्ण है, यह कहना सामान्य बुद्धि के लिए असम्भव है। फिर भी जिन मंत्रों का संग्रह किया गया है, वे उदात्त भावनाओं और प्रभुभक्ति के प्रेरक हैं।

यद्यपि वेदमन्त्र स्वतः पूर्ण हैं, तथापि उनको सामान्य जन नहीं समझ पाते। अतः इस संग्रह में दिए मन्त्रों का अन्वय–सहित सरलार्थ करके पुनः उसका पद्यानुवाद कर दिया गया है। पद्यानुवाद का उद्देश्य यही है कि वेद की उदात्त भावनाओं को पाठक संगीतमय पद्धति से श्रद्धापूर्ण हो हृदयंगम कर सकें। इस प्रकार के संग्रह का यह प्रथम पुष्प है। यदि जनता इससे लाभ उठाएगी और जीवन ने साथ दिया तो इसी प्रकार का दूसरा पुष्प भी यथासमय प्रस्तुत किया जाएगा।

इस पुस्तक के प्रकाशन में श्री वीरसेन मुखी का महत्त्वपूर्ण योगदान है। उन्होंने श्री बिशननारायण मुखी मेमोरियल केन्द्र, कीर्तिनगर, नई दिल्ली द्वारा इस पुस्तक को प्रकाशित

कर एक ओर वेद-प्रचार में वृद्धि की तो दूसरी ओर जनसामान्य को सन्मार्ग दिखाने का भी प्रयास किया। इस कार्य के लिए उनका और उनके न्यास का हार्दिक धन्यवाद।

प्रयास यही किया गया है कि प्रकाशन उत्तम तथा आकर्षक हो और पाण्डुलिपि के शोधन में कोई त्रुटि न रहे। फिर भी मनुष्य तो अल्पज्ञ है, त्रुटियों की संभावना रहती ही है। इसके लिए इतना ही कहा जा सकता है।

गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।

हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः।।

उपयोगी परामर्शों को सधन्यवाद अग्रिम संस्करणों में कार्यान्वित करने का प्रयास किया जाएगा।

विदुषां विधेयो

वेदप्रकाशः शास्त्री

श्री बिशननारायण मुखी मेमोरियल-केन्द्र का संक्षिप्त परिचय

श्री बिशननारायण मुखी मेमोरियल केन्द्र उन महानुभावों के नाम से प्रकाशन का कार्य कर रहा है, जिन्होंने अपने सम्पूर्ण जीवन में आर्यसमाज की सेवा करना अपना कर्त्तव्य समझा। यह पुस्तक इसी प्रकाशन द्वारा उनके सुपुत्र श्री वीरसेन मुखी व्यवस्थापक के द्वारा प्रकाशित हो रही है।

श्री बिशननारायण मुखी श्री इन्द्रभान मुखी के सुपुत्र और श्री ताराचन्द्र मुखी के पौत्र थे, जिनका जन्म 7 जनवरी 1906 के दिन डेरागाज़ी खाँ में, जो पाकिस्तान में चला गया है, हुआ था। अपने दादाजी से प्रेरणा प्राप्त कर श्री बिशननारायण आर्यसमाज के क्रियाकलापों में दस वर्ष की आयु से ही भाग लेने लग गए थे। श्री बिशननारायण 12 मार्च 1994 को यह पार्थिव शरीर त्यागकर भगवान् की गोद में जा विराजे थे।

महर्षि दयानन्द के प्रेरक जीवन ने उनमें वह उत्साह भर दिया कि श्री बिशननारायण मुखी प्रातःकाल ही जंगल के रास्ते मीलों पैदल चलकर आर्यसमाज के भाषणों को सुनने तथा क्रियाकलापों में भाग लेने जा पहुँचते थे। स्वर्गीय मुखीजी कराची, नेपाल, मानसरोवर गार्डन तथा कीर्तिनगर दिल्ली के आर्यसमाजों के निर्माण में निरन्तर सहयोग देते रहे। आप दिल्ली प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, मन्दिर मार्ग, दिल्ली तथा

सार्वदेशिक सभा के सक्रिय अंतरंग सदस्य रहे। यज्ञों के प्रति आपकी अपूर्व श्रद्धा थी। घर-घर यज्ञशालाएँ बनवाना, अपने घर में यज्ञशाला रचकर उसमें समय-समय पर यज्ञ कराना, गुरुकुलों और वैदिक आश्रमों को सहयोग देना इत्यादि कार्य आप निरन्तर करते रहते थे।

वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार में आप की लगन देखकर परमपिता ने भी आपको बहुत सहयोग दिया। प्रभु की कृपा से आपको धर्मपरायणा धर्मपत्नी श्रीमती मोहनदेवी जी प्राप्त हो गईं, जिन्होंने अपने पुत्र-पुत्रियों में भी वैदिक धर्म के प्रति अपूर्व निष्ठा उत्पन्न कर दी। आपके पुत्रों में श्री युधिष्ठिर लाल, श्री वीरसेन, स्व॰ विजयकुनार, श्री सुदेशमित्र और श्री भारतभूषण अपनी धर्मपत्नियों सहित वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार में सहयोग दे रहे हैं। इसी प्रकार आपकी पुत्रियाँ श्रीमती राजरानी (धर्मपत्नी श्री हरिदेव भाटिया) और श्रीमती लीलावन्ती (धर्मपत्नी श्री ओम्प्रकाश वर्मा) अपने पतियों और सन्तानों सहित वैदिक धर्म के कार्यों में पूर्णतः निष्ठित हैं।

श्री स्व॰ बिशननारायण मुखी का यह सारा परिवार सदा ही वेद के प्रचार-प्रसार में सहयोग देता रहे तथा यह संस्था भविष्य में भी इसी प्रकार से सम्बन्धित साहित्य के प्रकाशन में सक्रिय रहे, यही प्रभु से प्रार्थना है।

—वेदप्रकाश शास्त्री

दो शब्द

वेद शब्द का एक अर्थ ज्ञान भी है। संसार की किसी पुस्तक का अर्थ ज्ञान नहीं है। ज्ञान के द्वारा ही संसार सुख-शान्ति तथा आनन्द को प्राप्त करता है। वेद सुखी जीवन की कुंजी है, प्रभु-प्रदत्त अमृतमय ज्ञान है। वेद मानव-ज्ञान की अनमोल सम्पदा है। सृष्टि के आरम्भ में परमेश्वर ने वेद ज्ञान प्राणि-मात्र के लिए प्रदान किया। वेद सृष्टि का संविधान है। मनुष्य-जीवन का उद्देश्य क्या है? संसार में वह किंसलिए आता है और कहाँ जाता है? हमारा कर्त्तव्य क्या है? जीवन और जगत को श्रेष्ठ, सुन्दर तथा आदर्श कैसे बनायें? आदि प्रश्नों का वेदों में व्यावहारिक एवं उपयोगी उत्तर दिया गया है। वेद सबके हैं, सबके लिए हैं और सबको पढ़ने का अधिकार है। वेदों में मानवता का चिन्तन है। वेद-चिन्तन में कोई ऊँच-नीच, छोटे-बड़े का भेदभाव नहीं है।

जबसे मानव-समाज में वेदों के अर्थ के अनर्थ किए गए, तभी से वेदों का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना कम हो गया। तभी से अनेक पंथ, सम्प्रदाय तथा गद्दियाँ बन गईं और वेदों के नाम पर आम जनता को गुमराह किया गया। महर्षि दयानन्द ने संसार को वेदों का पुनः यथार्थ स्वरूप दिखाया और कहा-"वेदों की ओर लौटो और वेदों को मानो, तभी जीवन का कल्याण संभव है। वेद-मार्ग ही सच्चा पथ है। यह रास्ता ही मनुष्य को जीवन के उद्देश्य तक पहुँचा सकता है। अन्य मार्ग उलझन, भ्रान्ति और भटकन से भरे हुए हैं।" वेदों का आदेश-उपदेश तथा संदेश ही संसार को विश्व-

बन्धुत्व एवं शान्ति के मार्ग पर ला सकता है। भूली-भटकी मानव-जाति को यदि कोई सत्य ज्ञान का रास्ता बता सकता है तो केवलमात्र वेद ही हैं। इसलिए आज के सन्दर्भ में वेदों के पठन-पाठन और प्रचार-प्रसार की बड़ी आवश्यकता है।

'श्रुति-शतक' चारों वेदों से चुने हुए मंत्रों का एक गुलदस्ता है, जिसमें स्तुति, प्रार्थना, उपासना, प्रभु-महिमा, भक्ति, जीवन को पवित्र तथा श्रेष्ठ बनाने वाले सुगन्धित मन्त्रों का संकलन है। मन्त्रों का चयन, व्याख्या तथा पद्यानुवाद प्रेरक व प्रशंसनीय है। सभी मंत्र पठनीय, स्मरणीय, संग्रहणीय और आचारणीय हैं।

'श्रुति-शतक' के व्याख्याता श्री आचार्य वेदप्रकाश शास्त्री स्वयं अपने में स्वाध्यायशील, चिन्तक एवं मनीषी हैं। इसी कारण सीधे-सादे शब्दों में सरलार्थ तथा पद्यानुवाद आकर्षक और हृदयग्राही बन पाया है। सामान्यजन भी मन्त्र की मूल चेतना और भावना को समझ सकते हैं, यह पुस्तक की महत्त्वपूर्ण विशेषता है।

विनीत

डॉ॰ महेश विद्यालंकार
बी॰जे॰/29, शालीमार बाग (पूर्वी),
दिल्ली

पुरोवाक

मानव-जीवन के सुख-शान्तिमय स्वरूप के निर्धारणार्थ परमपिता परमात्मा ने आदिसृष्टि में वैदिक दृष्टि का संसृजन पवित्रान्तःकरण ऋषियों के अन्तरात्मा में किया। महर्षि मनु ने "वेदोऽखिलो धर्ममूलम्" कहकर सम्पूर्ण वेद को धर्म (मानवीय कर्त्तव्यों) का मूल बताते हुए वेद की महत्ता का प्रतिपादन किया है। आर्यसमाज के संस्थापक, वेदों के महान् विद्वान् एवं मानवता के सजग प्रहरी महर्षि दयानन्द सरस्वती ने आर्यसमाज के तीसरे नियम में वेद के पठन-पाठन एवं सुनने-सुनाने को मानवमात्र का परमधर्म बताते हुए निर्देश दिया, "वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।"

आदरणीय आचार्य श्री वेदप्रकाश शास्त्री वेद एवं संस्कृतवाङ्मय के प्रकाण्ड विद्वान् हैं। संस्कृत-साहित्य की विविध विधाओं पर आपका असाधारण अधिकार है। आपने विलक्षण प्रतिभा एवं ज्ञान गाम्भीर्य द्वारा चारों वेदों के चयनित शताधिक मन्त्रों का काव्यात्मक भाव सरस शैली में मानवमात्र के कल्याणार्थ पवित्रवाणी से प्रवाहित किया है, जिस पारसमणि के संस्पर्श से प्रत्येक लोहरूप जन-सामान्य भी स्वजीवन को स्वर्ण-सम सुन्दर बना सकता है।

वेदमन्त्रों का यह काव्यात्मक भाव विद्यार्थियों एवं आर्यवीरों के जीवन में नैतिक विचारों के उत्पादन के लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होगा। ऐसा मेरा विश्वास है कि विद्यार्थी वेदमन्त्रों को स्मरण कर उनके भावगाम्भीर्य को कविता के माध्यम से

सहज समझकर लाभान्वित हो सकेंगे। बाल-प्रतियोगिताओं के लिए प्रस्तुत पुस्तक में वर्णित वेदमन्त्र एवं उनका काव्यानुवाद अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकेगा। बाल-प्रतियोगी वेद के अनेक मन्त्रों एवं उनके भावों को काव्यशैली में हृदयंगम कर वेद-ज्ञान-राशि से अपनी रिक्त झोली प्रपूरित कर वैदिक दृष्टि से जीवन के लिए उपयोगी वातावरण का संसृजन करने में भी समर्थ हो सकेंगे। आवश्यकता है विभिन्न विद्यालयों एवं आर्यसमाजों में उपयुक्त कार्यक्रमों का आयोजन कर व्यापक प्रचार की।

परमात्मा कृपा करें कि शास्त्रीजी के इस तपोमय वेद-काव्यामृत-वारि से वेद-ज्ञान-पिपासु-विद्यार्थी स्वजीवन पुष्ट कर, वेद-दृष्टि के प्रचार-प्रसार से समष्टि में सुख-शान्ति का संचार करने में समर्थ हो सकें।

तिथि : बैशाख कृ॰3 वि॰सं॰ 2056
दिनांक : 4 अप्रैल 1999

आचार्य ऋषिपाल शास्त्री
आर्यसमाज कीर्तिनगर
नई दिल्ली-110015

म॰सं॰	मन्त्र का संकेत	पृष्ठ संख्या
1.	विश्वानि देव सवितः	16
2.	उप त्वाऽग्ने दिवे दिवे	17
3.	अग्ने यं यज्ञमध्वरम्	18
4.	ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्	19
5.	यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने	20
6.	इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निम्	21
7.	स नः पितेव सूनवे	22
8.	मा प्र गाम पथो वयम्	23
9.	प्राग्नये वाचम्	24
10.	सोम गीर्भिष्ट्वा	25
11.	तुञ्जे तुञ्जे य उत्तरे	26
12.	आ त एतु मनः	27
13.	इन्द्र आशाभ्यस्परि	28
14.	आ त्वा रम्भम् न	29
15.	इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तम्	30
16.	तरत् स मन्दी धावति	31
17.	नयसीद्वति द्विषः	32
18.	सोम रारन्धि नो हृदि	33
19.	बृबृदुक्थं हवामहे	34
20.	चोदयित्री सूनृतानाम्	35
21.	केतुं कृण्वन्नकेतवे	36
22.	त्वं नः सोम विश्वतो	37
23.	प्रियो नो अस्तु	38
24.	निषसाद धृतव्रतो वरुणः	39
25.	महो अर्णः सरस्वती	40

म॰सं॰	मन्त्र का संकेत	पृष्ठ संख्या
26.	अतो विश्वान्यद्भुता	41
27.	त्वं च सोम नो वशो	42
28.	मधु वाता ऋतायते	43
29.	मधु नक्तमुतोषसो	44
30.	त्वामग्ने वाजसातमम्	45
31.	सं पूषन् विदुषा नय	46
32.	गूहता गुह्यं तमो	47
33.	आ हि ष्मा सूनवे	48
34.	यच्चिद्धि शाश्वता तना	49
35.	यमग्ने पृत्सु मर्त्यम्	50
36.	अपां मध्ये तस्थिवांसम्	51
37.	यस्येमे हिमवन्तो महित्वा	52
38.	अमी य ऋक्षाः	53
39.	इह त्वष्टारमग्रियम्	54
40.	सुरूपकृत्नुमूतये	55
41.	पूर्वीरिन्द्रस्य रातयः	56
42.	यस्माद् ऋते न सिध्यति	57
43.	तद्विष्णोः परमं पदम्	58
44.	तद्विप्रासो विपन्यवो	59
45.	ऋतस्य हि शुरुधः	60
46.	पवित्रं ते विततम्	61
47.	पृणीयादिन्नाधमानाय	62
48.	कदा क्षत्रश्रियम् नरमा वरुणम्	63
49.	प्राता रत्नं प्रातरित्वा	64
50.	इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि	65

मं॰सं॰	मन्त्र का संकेत	पृष्ठ संख्या
51.	उलूकयातुं शुशलूकयातुम्	66
52.	इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः	67
53.	भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुः	68
54.	अग्ने व्रतपते व्रतम्	69
55.	सदसस्पतिमद्भुतम्	70
56.	अश्मन्वती रीयते	71
57.	दृते दृंह मा मित्रस्य मा	72
58.	दृते दृंह मा। ज्योक्ते	73
59.	न तं विदाथ य इमा	74
60.	यतो यतः समीहसे	75
61.	अग्ने त्वं सुजागृहि	76
62.	यज्जाग्रतो दूरमुदैति	77
63.	प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रम्	78
64.	स्वयं वाजिंस्तन्वम्	79
65.	देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्	80
66.	यावती द्यावापृथिवी	81
67.	वेनस्तत् पश्यन्निहितम्	82
68.	यन्मे छिद्रं चक्षुषो	83
69.	द्यौः शान्तिरन्तरिक्षम्	84
70.	पावका नः सरस्वती	86
71.	अया पवस्य धारया	87
72.	अभी षु णः सखीनाम्	88
73.	महे च न त्वाद्रिवः	89
74.	सख्ये त इन्द्र वाजिनो	90
75.	त्वमङ्ग प्रशंसिषो	91

म॰सं॰	मन्त्र का संकेत	पृष्ठ संख्या
76.	त्वं हि नः पिता वसो	92
77.	अहमिद्धि पितुष्परि	93
78.	योगे योगे तवस्तरम्	94
79.	न कि देवा मिनीमसि	95
80.	अभित्वा शूर नोनुमो	96
81.	वसन्त इन्नु रन्त्यः	97
82.	अपामीवामपस्रिधमप	99
83.	मेधामहम् प्रथमाम्	100
84.	यत्र ब्रह्मविदो यान्ति	101
85.	भद्रमिच्छन्त ऋषयः	102
86.	कालो अश्वो वहति	103
87.	उपस्थास्ते अनमीवा	105
88.	अष्टाचक्रा नवद्वारा	106
89.	सहृदयं सामनस्यम्	107
90.	प्रियं मा कृणु देवेषु	108
91.	उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते	109
92.	पुनरेहि वाचस्पते	110
93.	शं नो आपो धन्वन्याः	111
94.	शतहस्त समाहर	112
95.	अनृणा अस्मिन्ननृणा	113
96.	यो भूतञ्च भव्यञ्च	114
97.	अकामो धीरो	115
98.	यस्तिष्ठति चरति	116
99.	अभयं मित्रादभयममित्राद्	117
100.	या मा लक्ष्मीः	118
101.	स्तुता मया वरदा	119

ओ३म्

ओ३म्

1. दुर्गुण दूर करो।

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद् भद्रं तन्न आसुव।

(देवता-सविता) ऋ/5/82/5

अन्वय तथा सरलार्थ

(देव सवितः) हे दिव्यगुणों के स्वामी, संसार को उत्पन्न करनेवाले तथा शुभकर्मों के प्रेरक प्रभो! (विश्वानि दुरितानि परासुव) हमारे सम्पूर्ण दुर्गुणों, दुर्व्यसनों और दुःखों को दूर कर दीजिए। (यद् भद्रम् तत् नः आसुव) जो कल्याणकारी गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ हैं, वे सब आप हमें प्राप्त कराइए। हमें प्रेरणा और सहायता दीजिए कि हम सदा उत्तम गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ ग्रहण करने में ही प्रयत्नशील रहें।

पद्यानुवाद

दिव्यगुणों के स्वामी सविता, दुर्गुण दुख सब दूर करो।
मंगलमय शुभ कर्म और गुण, हम में प्रेरित ईश करो।।
प्रेरक प्रभुवर! प्रेरित कर दो, चलें सदा सत्पथ पर हम।
श्रेष्ठ हो जीवन, जीवन में हों, उत्तमता के सभी नियम।।

२. हम तेरे पास आएँ।

उप त्वाऽग्ने दिवे दिवे दोषावस्तर्धिया वयम्। नमो भरन्त एमसि।।

(देवता-अग्निः) ऋ०/1/1/7

अन्वय तथा सरलार्थ

(अग्ने) हे स्वप्रकाशस्वरूप प्रभो! (वयम् दिवे दिवे) हम सब प्रतिदिन (दोषावस्तः) रात में तथा दिन में (नमो भरन्तः) आप को नमस्कार करते हुए (धिया) बुद्धि तथा कर्म द्वारा (त्वा) आपके (उप एमसि) पास आयें।

अर्थात् हम प्रतिदिन प्रातःकाल और सायंकाल आपकी उपासना ध्यानपूर्वक करें।

पद्यानुवाद

तेजोमय प्रभु प्रातः-सायम्, प्रतिदिन पास तुम्हारे आएँ।
श्रेष्ठ बुद्धि से श्रेष्ठ कर्म से, भक्तिभाव अपना दिखलाएँ।।
नमस्कार करें हम तुम को, श्रद्धामय यह जीवन हो।
बनें उपासक प्रतिदिन तेरे, स्थिर रखकर निज तन-मन को।।

3. हम अहिंसक ही यज्ञ करें।

अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि। स इद्देवेषु गच्छति।।

(देवता-अग्निः) ऋ॰/1/1/4

अन्वय तथा सरलार्थ

(अग्ने) हे तेज के भण्डार ईश्वर! (यम् अध्वरं यज्ञम्) आप जिस हिंसारहित और कुटिलतारहित यज्ञ को (विश्वतः परिभूः असि) सब ओर से व्याप्त करते हैं, (स इत् देवेषु गच्छति) वही यज्ञ देवताओं में पहुँचता है।

अर्थात् जो हिंसारहित यज्ञ हम आपको स्मरण करके करते हैं, वही उत्तम फलों को देने वाला होता है, उसी से ही जड़ तथा चेतन देवता तृप्त होकर सुख पहुँचाते हैं।

पद्यानुवाद

तेजोमय हे ईश्वर, जो है यज्ञ हमारा हिंसाहीन।
उसी यज्ञ से पुण्य है होता, और पाप सब होते क्षीण।।
उसी यज्ञ में आप व्याप्त हो, सफल बनाते हैं उसको।
वही सदा हितकर है होता, जड़-चेतन सब देवों को।।
इसीलिए तज कर हम हिंसा और कुटिलता जीवन में।
यज्ञ करें हम भक्तिभाव से, स्फूर्ति रहे नित तन-मन में।

4. ईश्वर-प्राप्ति परम लक्ष्य है।

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्, यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः। यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुः त इमे समासते।।

(देवता-विश्वेदेवाः) ऋ॰/1/164/39

अन्वय तथा सरलार्थ

(ऋचः परमे व्योमन् अक्षरे) सभी वेद मन्त्र परम आकाश के सम व्यापक अविनाशी उस परमात्मा से सम्बन्धित हैं; (यस्मिन् विश्वे देवाः अधि निषेदुः) जिस परमात्मा में सभी देवता समाए हुए हैं। (यः तत् न वेद) जो उस अक्षर, अविनाशी परमात्मा को नहीं जानता, या जानने का प्रयास नहीं करता, (ऋचा किम् करिष्यति) वह वेद-मन्त्रों को पढ़कर क्या प्राप्त कर लेगा? अर्थात् कुछ भी नहीं। (ये तद्विदुः) जो उस अक्षर ब्रह्म को जानते हैं, (ते इत् इमे समासते) वे ही ऐसे लोग हैं, जो उस प्रभु में समाधिस्थ होकर उससे परम आनन्द की प्राप्ति करते हैं।

भावार्थ यह है कि हमें चाहिए कि हम वेद-मन्त्रों द्वारा उस प्रभु को जानकर उस आनन्दमय में रमण करते हुए परम आनन्द की अनुभूति करें।

पद्यानुवाद

वह अक्षर अविनाशी ईश्वर, सब मन्त्रों का मुख्य विषय है।
सभी देव हैं उसके आश्रित, वही सर्वथा दैवतमय है।।
उसका ज्ञान नहीं जो करता, मन्त्रपाठ है व्यर्थ उसी का।
आनन्दपूर्ण मन रहता उसका, उसको जिसने जान लिया।।
पढ़ें ऋचाएँ बड़े ध्यान से, हम प्रभुभक्ति में लग जाएँ।
तभी लाभ है मन्त्रपाठ का, उसे जान यदि मोद मनाएँ।।

5. भक्तों के हितकर भगवान्।

यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि। तवेत्तत् सत्यमङ्गिरः।।

(देवता-अग्निः) ऋ०/1/1/6

अन्वय तथा सरलार्थ

(अङ्ग) हे परमप्रिय (अङ्गिरः) अंगों के रस, जीवन के सार (अग्ने) तेजःस्वरूप प्रभो, (यत् त्वं दाशुषे भद्रं करिष्यसि) जो आप आत्मसमर्पण करनेवाले भक्त का भला करेंगे, (तत् तव सत्यम् इत्) वह आपका सत्य नियम ही है।

अर्थात् आप आत्मसमर्पण करनेवाले भक्त का सदैव मंगल ही करते हैं और उसे कष्टों से बचाते हैं।

पद्यानुवाद

अंग-अंग में रमने वाले, प्यारे प्रभुजी आप सदा।
भक्तजनों का मंगल करते, हरते उनकी सब विपदा।।
आत्मसमर्पण करता जो जन, उसका हित ही करते आप।
संकट में सहारा देकर, उसका हर लेते सन्ताप।।
आत्मसमर्पण करें आप को, श्रद्धापूर्ण हृदय से हम।
भक्तिभाव में रमे रहें हम, भले ही संकट सहें विषम।।

६. ईश्वर के अनेक नाम।

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।।

(देवता–सूर्यः) ऋ॰/1/164/46

अन्वय तथा सरलार्थ

(एकं सत् अग्निं विप्राः बहुधा वदन्ति) जो एक ही अग्निस्वरूप है, विद्वान् लोग उसे कई नामों से पुकारते हैं, (इन्द्रम्, मित्रम्, वरुणम्, अग्निम् आहुः) परमैश्वर्यशाली होने के कारण उसे इन्द्र, प्राणिमात्र का स्नेही होने से उसे मित्र, वरणीय होने के कारण उसे वरुण और सबसे उत्कृष्ट और प्रेरक होने के कारण उसे अग्नि कहते हैं। (अथ उ स सुपर्णः गरुत्मान्) और वही सुन्दर कार्य करने के कारण सुपर्ण और सबसे मुख्य आत्मा होने के कारण गरुत्मान् भी कहलाता है। उसी को ही (यमम् मातरिश्वानम् आहुः) सबका नियन्ता होने के कारण यम और प्रकृति में गति देने के कारण मातरिश्वा भी कहते हैं। इस प्रकार उस एक ही ईश्वर के अनेक नाम हैं।

पद्यानुवाद

एक है ईश्वर, नाम अनेकों, अपने कर्मों और गुणों से।
उसकी महिमा को हैं ज्ञानी, गाते विविध नाम ले उसके।।
इन्द्र, मित्र, वरुण वह अग्नि, दिव्य सुपर्ण भी वह कहलाता।
गरुत्मान् भी उसको कहते, नियमन करता यम बन जाता।।
जड़ प्रकृति में गति लाकर वह, मातरिश्वा भी हो जाता।
विविध नाम गुण–कर्म हैं उसके, नाम अनेक एक कहलाता।

7. प्रभु को समीप समझो।

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव। सचस्वा नः स्वस्तये।।

(देवता-अग्निः) ऋ०/1/1/9

अन्वय तथा सरलार्थ

(अग्ने) हे आगे ले जानेवाले प्रभो! (स त्वम् सूनवे पिता इव सु उपायनः भव) जैसे पिता पुत्र के लिए सुगमता से पहुँचने योग्य हो जाता है, ऐसे ही आप भी हमारे समीप हो जाइए और (नः स्वस्तये सचस्वा) हमें कल्याण-मार्ग की ओर बढ़ाइए।

भाव यह है कि प्रभु की समीपता की अनुभूति हम में सदा रहनी चाहिए, मानो कि हम अपने पिता की गोद में बैठे हुए हों और उसकी प्रेरणा से हम सदा कल्याण के मार्ग पर ही चलें।

पद्यानुवाद

अग्निदेव! तुम भक्तजनों को उन्नतिपथ दिखलाते हो।
श्रेष्ठ पिता-सम भक्त-सुतों को आगे ही ले जाते हो।।
हो करके सुप्राप्य हमें तुम, मंगलमय पथ दिखलाओ।
भूले-भटके हम अज्ञानी, ज्ञान-ज्योति से चमकाओ।।
पिता आप हैं, पुत्र हैं हम सब, हममें चेतनता भर दो।
नहीं सुमार्ग से विचलित हों हम, योग्य हमें ऐसा कर दो।

८. हम यज्ञ से विचलित न हों।

मा प्र गाम पथो वयम् मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः। मान्तः स्थुर्नो अरातयः।।

(देवता-विश्वेदेवाः) ऋ॰/10/57/1

अन्वय तथा सरलार्थ

(इन्द्र! वयं सोमिनः यज्ञात् पथः मा प्रगाम) हे परमैश्वर्यशाली भगवन्! हम लोग ऐश्वर्य से युक्त होकर भी यज्ञ के मार्ग से विचलित न हों। (नः अन्तः अरातयः मा तस्थुः) हमारे मध्य में कंजूस और दान न देनेवाले कभी भी न रहें।

भावार्थ यह है कि हम देवपूजा, मेलजोल और दानकर्म आदि यज्ञीय कर्म करते रहें। कहीं ऐसा न हो कि धनी हो जाने पर हम इन शुभ कर्मों को करना छोड़ दें। इसीलिए हमारे मध्य अदानी लोग नहीं रहने चाहिएँ।

पद्यानुवाद

परमैश्वर्य के स्वामी ईश्वर, धन-बल के हम स्वामी हों।
पाकर के ऐश्वर्य भी हम सब, नहीं कभी अभिमानी हों।।
यज्ञमार्ग पर सदा चलें हम, परोपकार में लगे रहें।
यज्ञमार्ग से नहीं हों विचलित, चाहे कितने कष्ट सहें।।
हममें लोभी और अदानी, नहीं कोई भी मानव हो।
परहित से जो चित्त चुरावे, स्वार्थभरा जो दानव हो।।

9. हम में द्वेष न रहे।

प्राग्नये वाचमीरय वृषभाय क्षितीनाम्। स नः पर्षद् अति द्विषः।।

(देवता-अग्निः) ऋ॰/10/187/1

अन्वय तथा सरलार्थ

(क्षितीनाम् वृषभाय अग्नये वाचम् प्रेरय) हे मानव! तू मानवमात्र के लिए आनन्द की वर्षा करनेवाले स्वप्रकाशस्वरूप प्रभु के लिए अपनी वाणी को प्रेरित कर, अर्थात् उसके गुणों का गान कर। (सः नः द्विषः अति पर्षद्) केवल वही प्रभु हमें शत्रुओं से पार कर सकता है; अर्थात् उसी की कृपा से हम शत्रुओं को परास्त कर सकते हैं या उन्हें मित्र बना सकते हैं।

पद्यानुवाद

मानवमात्र में सुख के वर्षक, प्रभु के गुण-गण गाओ प्राणी।
सबका प्रेरक अग्निरूप वह, वही गुरु वह सर्वज्ञानी।।
उसकी कृपा से हो सकता है, द्वेषभाव का पूर्ण विनाश।
उसकी कृपा से ही है होता, मित्रभाव का सदा विकास।।
उसके गुण जब गाएँगे हम, फैलेगा तब ही सद्भाव।
अरिगण भी तब मित्र बनेगा, सब में स्नेह का होगा चाव।।

10. सोम आनन्द का स्त्रोत है।

सोम गीर्भिष्ट्वा वयं वर्धयामो वचोविदः। सुमृडीको न आविश।।

(देवता–सोमः) ऋ॰/1/91/11

अन्वय तथा सरलार्थ

(सोम) हे प्रशान्तस्वरूप आनन्ददायक प्रभो, (वयं वचोविदः त्वा गीर्भिः वर्धयामः) हम लोग, जो वाणी को जानते हैं, स्तुतियों द्वारा आपको अपने हृदय–मंदिर में बढ़ा रहे हैं। अर्थात् स्तुति द्वारा आपका ध्यान कर रहे हैं। (सुमृडीकः नः आविश) आप सुखदाता हैं, अतः सुख देने के लिए हमारे हृदयों में प्रवेश कीजिए।

भावार्थ यह है कि भगवान् की स्तुति करने से भक्ति में जब मन लग जाएगा, तब प्रभु के स्वरूप में लीन होकर हम आनन्द की अनुभूति कर सकेंगे।

पद्यानुवाद

हैं शान्तिदाता आप भगवन्, हम वचोविद्–मात्र हैं।
कर रहे स्तुति आपकी हम, हम कृपा के पात्र हैं।।
इस स्तुति से आपको हम, मन में नित्य बढ़ा रहे।
आइए प्रभु मन में जिससे, प्रेमस्त्रोत सदा बहे।।
आएँगे जब इस हृदय में, चाञ्चल्य सब मिट जाएगा।
ध्यान में हो लीन मन, आनन्द का रस पाएगा।।

11. प्रभु के उपकार अवर्णनीय हैं।

तुञ्जे तुञ्जे य उत्तरे स्तोमाः इन्द्रस्य वज्रिणः। न विन्धे अस्य सुष्टुतिम्।।

(देवता-इन्द्रः) ऋ॰/1/7/7

अन्वय तथा सरलार्थ

(वज्रिणः इन्द्रस्य) पापविनाशक और परमैश्वर्यशाली इन्द्र के (तुञ्जे तुञ्जे) प्रत्येक दान पर (ये उत्तरे स्तोमाः) मेरे द्वारा बढ़-चढ़कर गाए गए जो स्तुतिगान हैं, उनसे भी मैं (अस्य सु स्तुतिम् न विन्धे) इन्द्र की पूर्णरूप से स्तुति नहीं कर पा रहा।

अर्थात् चाहे मैं इन्द्र के कार्यों की कितनी भी स्तुति करूँ, मैं पूर्णरूप से उसका वर्णन करने में असमर्थ हूँ। उसके दान तो अनन्त है और मेरी वाणी सीमित है।

पद्यानुवाद

पापनाशक इन्द्र! मैं तेरी स्तुति कैसे करूँ?
तूने किए उपकार कितने, मैं उन्हें कैसे गिनूँ??
उपकार तेरे अनन्त हैं, उनको मैं गिन सकता नहीं।
कितनी भी स्तुतियाँ मैं करूँ, पर पार पा सकता नहीं।।
असमर्थ हो मस्तक झुका, आभार तेरा मानता।
हम विनीत हैं पुत्र तेरे, तू सर्वदाता है पिता।।

12. प्रभुभक्ति सफलता का मूल है।

आ त एतु मनः पुनः क्रत्वाय दक्षाय जीवसे। ज्योक् च सूर्यं दृशे।।

(देवता-विश्वेदेवाः) ऋ०/10/57/4

अन्वय तथा सरलार्थ

(क्रत्वे दक्षाय जीवसे) शुभ कर्म करने के लिए, बुद्धि और बल पाने के लिए, दीर्घ आयु की प्राप्ति के लिए (ज्योक् च सूर्यं दृशे) और निरन्तर संसार को प्राण देनेवाले आप सूर्य को देखने के लिए (मनः पुनः ते एतु) मेरा मन फिर आपकी ओर लग जाए।

भावार्थ यह है कि हम मनको नियंत्रित कर भगवान् का भजन करें तो हम सत्कर्म, सत्संकल्प, बल, बुद्धि दीर्घायु और प्रभु-दर्शन जैसे लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

पद्यानुवाद

शुभ कर्म करने के लिए, सद्बुद्धि पाने के लिए।
तज कर निराशा को, पुनः उत्साह लाने के लिए।।
बल प्राप्त करने के लिए, शुभ ईश-दर्शन के लिए।
हे मेरे मन! कर ध्यान प्रभु का, श्रेष्ठ गुणगण के लिए।।
ईश-भक्ति में तू लग जा, फिर सभी सुख पाएगा।
मिट जाएँगे सब दुःख-संकट, आनन्दमय हो जाएगा।।

13. इन्द्र की शरण निर्भय बना देती है।

इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत्। जेता शत्रून् विचर्षणिः।।

(देवता-इन्द्रः) ऋ०/2/41/12

अन्वय तथा सरलार्थ

(इन्द्र) हे दुष्टों को नष्ट करनेवाले परमेश्वर, आप (शत्रून् जेता) शत्रुओं पर विजय प्राप्त करनेवाले और (विचर्षणिः) सबके कर्मों के साक्षी हैं। आप हमें (सर्वाभ्यः आशाभ्यः अभयं परि करत्) सभी ओर से, सभी दिशाओं से निर्भय बना दीजिए।

अर्थात् ऐसी कृपा कीजिए कि हम जहाँ जाएँ, निर्भय होकर रहें और हमें कोई शत्रु पीड़ित न कर सके।

पद्यानुवाद

सब दुष्ट-दल का दमनकर्त्ता, अरिदल-विजेता इन्द्र है।
शुभ या अशुभ कर्मों का द्रष्टा, फल-प्रदाता इन्द्र है।।
हे इन्द्र! हमको हर दिशा से आप निर्भय कीजिए।
हम हैं शरण में आपकी, भय-विघ्न सब हर लीजिए।।
पूर्व हो, हो चाहे पश्चिम, सब कहीं निर्भय रहें।
आप का हो साथ जब, फिर अन्य से हम क्यों डरें??

14. प्रभु का सहारा लीजिए।

आ त्वा रम्भं न जिव्रयो ररम्भ शवसस्पते। उश्मसि त्वा सधस्थ आ।।

(देवता-इन्द्रः) ऋ॰/8/45/20

अन्वय तथा सरलार्थ

(शवसस्पते) हे बलों के स्वामी इन्द्र! (जिव्रयः न ररम्भ) जैसे बूढ़े लोग डण्डे का सहारा लेते हैं, उसी प्रकार (त्वा आररम्भ) हमने आप का सहारा लिया है। हम (त्वा सधस्थे आ उश्मसि) सदा आप को अपने साथ ही रखना चाहते हैं।

तात्पर्य यह है कि सर्वशक्तिमान् प्रभु का सहारा लेकर ही मानव चहुँमुखी उन्नति कर सकता है। अतः उसे सदा साथ समझना चाहिए।

पद्यानुवाद

वृद्ध मानव का सहारा, दण्ड होता हाथ का।
उस तरह सुबलिष्ठ भगवन्, हमको सहारा आप का।।
हम चाहते हैं आपको ही साथ रखना सर्वदा।
आपके आश्रय से भगवन्, नष्ट होती आपदा।।
साथ ही रहिए हमारे, और सम्बल दीजिए।
निज सहारे से हमारे दुःख सब हर लीजिए।।

15. भगवान् परिश्रमी को चाहते हैं।

इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तम्, न स्वप्नाय स्पृहयन्ति। यन्ति प्रमादमतन्द्राः।।

(देवता-इन्द्रः) ऋ०/8/2/18

अन्वय तथा सरलार्थ

(देवाः सुन्वन्तम् इच्छन्ति) दिव्य शक्तियाँ या विद्वान् लोग यज्ञ करनेवाले परिश्रमी को ही चाहते हैं। (स्वप्नाय न स्पृहयन्ति) वे आलस्य तथा आलस्य करनेवालों को पसन्द नहीं करते। (अतन्द्राः प्रमादम् यन्ति) आलस्य से दूर रहनेवाले ही पूर्ण प्रसन्नता को प्राप्त करते हैं।

भावार्थ यह है कि ईश्वर तथा विद्वान् लोग उसी के सहायक होते हैं, जो आलस्य त्याग कर परिश्रम में लग जाता है।

पद्यानुवाद

करते परिश्रम जो भी जन, उनके सहायक देवता।
आलस्य में जो हैं पड़े, उनके न चाहक देवता।।
आलस्य तज कर कर्म में कटिबद्ध रहते जो सदा।
खुशियाँ उन्हीं के पास आतीं, पाते वही सुख-सम्पदा।।
इस हेतु सबको चाहिए, परिश्रम ही करना सर्वदा।
आलस्य है वैरी मनुज का, नाश करता यह सदा।।

16- प्रभुभक्त आगे बढ़ता जाता है।

तरत् स मन्दी धावति, धारा सुतस्यान्धसः। तरत् स मन्दी धावति।।

(देवता-पवमान सोम) ऋ॰/1/1/9

अन्वय तथा सरलार्थ

(सः मन्दी) वह प्रभु की भक्ति और स्तुति में आनन्द लेनेवाला व्यक्ति (सुतस्य अन्धसः धारा तरत् धावति) अपनाए हुए ध्यान की आनन्दमयी धारा में तैरता हुआ मुक्ति के लक्ष्य की ओर तेजी से बढ़ता चला जाता है। (सः मन्दी तरत् धावति) वही सच्चा भक्त वास्तव में प्रभु के आनन्द के रस का पान करता हुआ मुक्ति की ओर शीघ्रता से बढ़ जाता है।

भावार्थ यह है कि भक्ति-रस में डूबनेवाला व्यक्ति ही मोक्ष तक शीघ्रता से पहुँच सकता है, अन्य नहीं।

पद्यानुवाद

जो भक्ति में आनन्द लेता, तैरता जाता वही।
आनन्दमय भगवान् की धारा में रुकता है नहीं।।
ऊपर ही चढ़ता वह सदा, गिरता नहीं नीचे कभी।
मुक्त होकर ईश के ऐश्वर्य पाता वह सभी।।
ईश की भक्ति के रस में जिसने लिया आनन्द है।
उसका सदा वह साथ देता, जो कि परमानन्द है।।

17. इन्द्रिय-विजेता ही वीर है।

नयसीद्वति द्विषः, कृणोष्युक्थशंसिनः। नृभिः सुवीर उच्यते।।

(देवता-इन्द्रः) ऋ॰/6/45/6

अन्वय तथा सरलार्थ

(इन्द्र) हे जितेन्द्रिय जीवात्मन्, तू (द्विषः इत् उ अतिनयसि) शत्रुओं को निश्चयपूर्वक दूर भगा देता है, अर्थात् उनके द्वेषभाव को समाप्त करने की शक्ति रखता है। उन्हें तू (उक्थशंसिनः कृणोषि) अपना प्रशंसक बना लेता है। तुझ जैसा जितेन्द्रिय व्यक्ति ही (नृभिः सुवीरः उच्यते) मनुष्यों द्वारा श्रेष्ठ वीर कहा जाता है।

भावार्थ यह है कि इन्द्रियों को संयम में रखनेवाला मानव इन्द्र बनकर, शत्रुओं को नम्र होने के लिए विवश कर देता है और वे उसके प्रशंसक बनकर उसे श्रेष्ठ वीर कहने लगते हैं।

पद्यानुवाद

इन्द्रिय-दमन जो कर सके, जो संयमित जीवन जिए।
मनुज भी वह इन्द्र है, आदर्श वह सबके लिए।।
शत्रुजन करते प्रशंसा, उसके सद्व्यवहार की।
शत्रुता को छोड़ करके, बात करते प्यार की।।
शत्रुओं को वश में कर, वह नष्ट करता द्वेष को।
मित्रतामय ही बनाता, वह सदा परिवेश को।।
बनते प्रशंसक सब हैं उसके, और गुण गाते सदा।
'वह ही सच्चा वीर है', कह मान दिखलाते सदा।।

18- हे सोम ! हमारे हृदयों में रमण करो।

सोम रारन्धि नो हृदि गावो न यवसेष्वा। मर्य इव स्व ओक्ये।।

(देवता-सोम) ऋ॰/1/91/13

अन्वय तथा सरलार्थ

(सोम) हे शान्तिप्रदाता भगवन्! (न गावः यवसेषु) जैसे गायें हरे चारे में और (इव मर्य स्वओक्ये) जैसे मनुष्य अपने घर में रमण करते हैं, उसी प्रकार आप (नः हृदि रारन्धि) हमारे हृदय में रमण कीजिए।

भावार्थ यह है कि जैसे हरा चारा पशुओं को और घर मनुष्यों को प्रिय होता है, उसी प्रकार भक्ति-भावना से पूर्ण हृदय भगवान् को प्रिय होता है। भक्त अपने हृदय को भक्ति से पूर्ण करके प्रभु के दर्शनों की हृदय में चाह करता है।

पद्यानुवाद

आनन्दमय हे सोम! तुम मेरे हृदय में यों बसो।
जैसे हरित चारे के अन्दर रमण करती गाएँ हों।।
जैसे मनुज स्वच्छन्दता से, घर में करता है रमण।
उस भाँति मेरे हृदय में प्रभु! कीजिए शुभ आगमन।।
मैंने हृदय को स्वच्छ कर रमणीय ही है बना लिया।
प्रेम-रस से भक्ति-रस से पूर्ण इसको कर दिया।।

19. सर्वरक्षक इन्द्र को पुकारो।

बृबदुक्थं हवामहे, सृप्रकरस्नमूतये। साधु कृण्वन्तमवसे।।

(देवता–इन्द्रः) ऋ॰/8/32/10

अन्वय तथा सरलार्थ

(बृबदुक्थम्) अतीव प्रशंसनीय, स्तुति करने योग्य (सृप्रकरस्नम्) सब ओर फैली हुई भुजारूपी शक्तियों वाले (इन्द्रम्) शक्तिशाली और परमैश्वर्यशाली परमात्मा को हम (हवामहे) पुकार रहे हैं और (साधु कृण्वन्तम् अवसे हवामहे) सदा ही मंगल करने वाले उस इन्द्र को अपनी रक्षा, गति तथा शोभा आदि के लिए भी हम पुकार रहे हैं।

भावार्थ यह है कि प्रभु की शरण में जानें से मनुष्य को भय नहीं रहता और जीवन में उत्साह और शोभा बनी रहती है।

पद्यानुवाद

आओ स्तुति करें इन्द्र की, सब ओर से रक्षक वही।
पालक वही, सौन्दर्यवर्धक और गतिदायक वही।।
उसकी भुजाएँ विश्व में सब ओर हैं फैली हुई।
रक्षा निरन्तर कर रहीं सब प्राणियों की हैं वही।।
सर्वव्यापक ईश का करते निरन्तर ध्यान जो।
निश्चिन्त रहने हैं जगत् में, वे सुरक्षित पूर्ण हो।

20. माधुर्य और सत्यता की प्रेरक वेदवाणी।

चोदयित्री सूनृतानाम् चेतन्ती सुमतीनाम्। यज्ञं दधे सरस्वती।।

(देवता–सरस्वती) ऋ॰/1/3/11

अन्वय तथा सरलार्थ

(सूनृतानां चोदयित्री) मधुर और सत्यवाणी की प्रेरिका, (सुमतीनां चेतन्ती) पवित्र बुद्धिवालों में ज्ञान का संचार करने वाली (सरस्वती यज्ञं दधे) सरस्वती यज्ञीय कार्यों को धारण कराती है।

भावार्थ यह है कि पवित्र वेदवाणी मधुर और सत्यभाषण की प्रेरणा देकर और सुबुद्धियों में ज्ञान का सञ्चार कर देवपूजा, संगतिकरण और दान आदि श्रेष्ठ कार्यों में लोगों को प्रवृत्त करती है।

पद्यानुवाद

जो प्रेरणा देती मधुर अरु सत्यभाषण के लिए।
ज्ञान पाते सुबुद्धि–जन सत्कर्म करने के लिए।।
वह सरस्वती है वेदवाणी, ज्ञान का भण्डार है।
उस वेदवाणी का प्रदाता, ईश करुणागार है।।
उस ईश ही की कृपा से, है सरस्वती प्रेरिका।
निर्मल बनाती बुद्धियों को, वँह सरस्वती देवता।।

21. जीवात्मा ही जड़ को चेतन करता है।

केतुं कृण्वन्नकेतवे, पेशो मर्या अपेशसे। समुषद्भिः अजायथाः।।

(देवता-इन्द्रः) ऋ०/1/6/3

अन्वय तथा सरलार्थ

(इन्द्र) हे जीवात्मा! (मर्या अकेतवे केतुं कृण्वन्) ज्ञानरहित मरणशील इस देह में ज्ञान और चेतना उत्पन्न करता हुआ (अपेशसे पेशः कृण्वन्) और सौन्दर्यहीन पार्थिव शरीर में सौन्दर्य उत्पन्न करता हुआ तू (उषद्भिः) अपनी जागरण-शक्तियों के साथ (सम् अजायथाः) उत्तम प्रकार से जन्म लेता है।

भावार्थ यह है कि मिट्टी आदि पाँच तत्त्वों में न चेतनता है और नाहीं वह शारीरिक सौन्दर्य है। जीवात्मा ही इस शरीर में आकर इसे चेतनता और सौन्दर्य प्रदान करता है।

पद्यानुवाद

प्रकृति जड़ है अरु अचेतन, सौन्दर्य भी इस में नहीं।
आत्मसत्ता इसमें आकर रचना बनाती है नई।।
यह आत्मसत्ता देह में, है चेतना उपजा रही।
सौन्दर्यहीन जो तत्त्व हैं जड़, सौन्दर्य उनमें ला रही।।
आत्मा बिना यह देह सारी, जड़ है मुर्दामात्र है।
सौन्दर्यहीन कुरूप है, यह मृत है, प्रकृतिमात्र है।

22. ईश है रक्षक सदा हमारा।

त्वं नः सोम विश्वतो रक्षा राजन् अघायतः। न रिष्येत् त्वावतः सखा।।

(देवता–सोमः) ऋ०/1/91/8

अन्वय तथा सरलार्थ

(राजन् सोम) हे देदीप्यमान सब पर शासन करनेवाले और सबके प्रेरक परमेश्वर (त्वं विश्वतः अघायतः नः रक्ष) आप सभी ओर से हिंसा करनेवाले लोगों से हमारी रक्षा कीजिए। (त्वावतः सखा न रिष्येत्) प्रभो, आप जैसा जिसका मित्र हो, उसे कोई भी नष्ट नहीं कर सकता।

भावार्थ यह है कि सोमरूपी प्रभु को जो अपना मित्र बना लेता है, प्रभु सारी ओर से उसकी रक्षा करते हैं और वह बड़े से बड़े संकटों से बच जाता है।

पद्यानुवाद

देदीप्यमान तुम सब के शासक, सोम! तुम्हीं हो मित्र हमारे।
हिंसकजन से करो सुरक्षित, सभी ओर से, सखा हो प्यारे।।
जो जन तुमको मित्र बनाता, उसका नाश न हो सकता।
हिंसक–जन का अस्त्र हो कुण्ठित, कहीं और जाकर रुकता।।
मित्र–जनों के तुम हो रक्षक, इसीलिए यह विनंय हमारी।
सोमदेव! स्वीकार करो यह, आए हैं हम शरण तुम्हारी।।

23. हम अग्निदेव के प्रिय बनें।

प्रियो नो अस्तु विश्पतिर्होता मन्द्रो वरेण्यः। प्रियाः स्वग्नयो वयंम्।।

(देवता-अग्निः) ऋ॰/1/26/7

अन्वय तथा सरलार्थ

(विश्पतिः) प्रजाओं को पालने वाला, (मन्द्रः) आनन्ददाता (वरेण्यः) सबसे श्रेष्ठ और वरणीय, (होता) सब वस्तुएँ देनेवाला और हमारी भक्ति आदि के दान को स्वीकार करने वाला (अग्निः) तेजःस्वरूप परमात्मा (नः प्रियः अस्तु) हमारे लिए प्रिय हो, अर्थात् हम प्रभु से सदा प्यार करें। (वयम् सु अग्नयः) हम भी उत्तम अग्नियों वाले होकर, उत्साहशील बनकर उसके (प्रियाः) प्रिय बन जाएँ।

भावार्थ यह है कि हम प्रभु से प्यार करें और अपने अन्दर ऐसे गुणों को धारण करें, जिससे प्रभु भी हमसे प्यार करें।

पद्यानुवाद

सब प्रजाओं का जो पालक, दे रहा सब कुछ हमें।
आनन्दमय उस श्रेष्ठ प्रभु का, भक्ति से पूजन करें।।
वह वरेण्य है, श्रेष्ठतम है, वरण हम उसका करें।
उत्साहपूर्वक प्रातः-सायं, प्रेम से उसको मिलें।।
भक्ति की शुभ अग्नि को हम जब जगावेंगे कभी।
अपनाएगा हमको प्रभु, हम उसके प्रिय होंगे तभी।।

24. राजाओं का भी राजा वरुण है।

निषसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा। साम्राज्याय सुक्रतुः।।

(देवता-वरुणः) ऋ॰/1/25/10

अन्वय तथा सरलार्थ

(धृतव्रतः सुक्रतुः वरुणः) उत्तम व्रतों को धारण करनेवाला सुन्दर संकल्पों और बुद्धिवाला वरुण, श्रेष्ठ परमात्मा (साम्राज्याय) विश्व के विशाल राज्य का प्रबन्ध करने के लिए (पस्त्यासु) सभी प्रजाओं के मध्य (आ निषसाद) विराजमान हो रहा है।

भावार्थ यह है कि वरुणरूप उस प्रभु की सत्ता सबमें विद्यमान है और विश्व के साम्राज्य का सुचालन वह शुभ संकल्पों और विचारपूर्वक ही कर रहा है। सारे संसार में उसी की व्यवस्था और प्रशासन है। इसी प्रकार मानव-सम्राट् को भी वरुण के समान ही साम्राज्य का प्रबन्ध करना चाहिए।

पद्यानुवाद

जो वरुण है, श्रेष्ठ व्रत, सद्बुद्धि से संकल्प से।
साम्राज्य करता विश्व पर, युग-युग तथा प्रति कल्प से।।
उस भाँति ही सम्राट् अपने शुभ व्रतों को धारकर।
सद्बुद्धि से संकल्प से, जनता के मध्य पधारकर।।
साम्राज्य का शासन चलाने हेतु ही सम्राट् बन।
करता सुशासन सुव्यवस्था, पाप का करता शमन।।

25. प्रभु ही वेदज्ञान का दाता है।

महो अर्णः सरस्वती प्रचेतयति केतुना। धियो विश्वा विराजति।।

(देवता-सरस्वती) ऋ॰/1/3/12

अन्वय तथा सरलार्थ

(सरस्वती केतुना महः अर्णः प्रचेतयति) ज्ञान की देवीरूप वह परमेश्वर अपने ज्ञान द्वारा विशाल वेदरूपी सागर को प्रकाशित करता है। अर्थात् सृष्टि के आरम्भ में वह वेदज्ञान देता है। (विश्वा धियः विराजति) उस ज्ञान द्वारा वह सम्पूर्ण बुद्धियों को चमका देता है।

भावार्थ यह है कि वह सरस्वतीरूप प्रभु मानवमात्र के कल्याण के लिए सृष्टि के आरम्भ में ही वेदों का ज्ञान देकर उन्हें सन्मार्ग दिखा देता है। उसी से मानव अपनी बुद्धियों का विकास करते हैं।

पद्यानुवाद

ईश-सरस्वती ज्ञान-सागर, मानवों को ज्ञान दे।
आलोक करता बुद्धियों में, वेद के शुभ ज्ञान से।।
वेदों से लेकर ज्ञान, मानव-बुद्धियाँ करतीं विकास।
शुभ प्रेरणा पाते हैं मानव, अज्ञान का होता विनाश।।
हम भी सरस्वतीरूप प्रभु से ज्ञान का कुछ अंश लें।
ज्ञानमय बनकर स्वतः, शुभ कर्म ही प्रतिदिन करें।।

२६. वरुण जानता भूत-भविष्यत्।

अतो विश्वान्यद्भुता चिकित्वाँ अभिपश्यति। कृतानि या च कर्त्वा।।

(देवता-वरुणः) ऋ॰/1/25/11

अन्वय तथा सरलार्थ

(चिकित्वान्) ज्ञान का सागर वरुण (अतः कृतानि या च कर्त्वा) अब से पूर्व जो कर्म किए जा चुके हैं तथा जो किए जाने हैं, (विश्वानि अद्भुता) उन सब विचित्र कर्मों और बातों को वह (अभिपश्यति) सम्पूर्ण रूप से देखता और जानता है।

भावार्थ यह है कि उस वरेण्य प्रभु से भूत और भविष्यत् का कोई भी कार्य या बात छिपी हुई या अज्ञात नहीं है; वह पूर्णतः सर्वज्ञ है।

पद्यानुवाद

जो हो चुका, होगा तथा जो हो रहा संसार में।
अद्भुत सभी बातें वरुण, वह देखता विस्तार में।।
उससे छिपाकर काम कोई भी तो हो सकता नहीं।
भूमि में, नभ में, जलधि में, वह देखता है सब कहीं।।
इस हेतु सबको सर्वदा शुभ कर्म करने चाहिएँ।
ये मन कदापि पाप में तो न लगाने चाहिएँ।।
पाप कर्म करेंगे यदि हम, दण्डित ही होंगे वरुण से।
शुभ कर्म ही करिए निरन्तर, तन से, वचन से, मन से।

27. प्रभु ही जीवनदाता है।

त्वं च सोम नो वशो जीवातुं न मरामहे। प्रियस्तोत्रो वनस्पतिः।।

(देवता-सोमः) ऋ०/1/91/6

अन्वय तथा सरलार्थ

(सोम) हे आनन्दमय प्रभो! (त्वं नः जीवातुं वशः) यदि आप हमारे जीवन को चाहते हैं, तो हम (न मरामहे) कभी मरेंगे नहीं, क्योंकि आप (प्रियस्तोत्रः वनस्पतिः) स्तुति करनेवाले भक्तजनों के प्रिय और बाँटकर खाने वालों के रक्षक और स्वामी हैं।

भावार्थ यह है कि जब तक प्रभु नहीं चाहते तब तक भक्तजनों की और बाँटकर खानेवालों की मृत्यु नहीं हो सकती; वे लोग दीर्घायु प्राप्त करते हैं।

पद्यानुवाद

आनन्दमय प्रभु आप यदि हैं चाहते जीवन हमारा।
न अग्नि हमको मार सकती, न मार सकती है जल की धारा।।
इच्छा है जब तक आपकी, तब तक ही हम जीते रहेंगे।
दीर्घ जीवन प्राप्त कर स्तुति आप की करते रहेंगे।
स्तोताजनों के, दानियों के आप रक्षक हैं सदा।
जब आप की होती कृपा, टलती है विपदा-आपदा।।

28. सत्याचरण से प्रकृति आनन्दमय हो जाती है।

मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः।।

(देवता–विश्वेदेवाः) ऋ॰/1/90/6

अन्वय तथा सरलार्थ

(ऋतायते वाताः मधु क्षरन्ति) सत्य का आचरण करने वाले के लिए हवाएँ आनन्द की वर्षा करती हैं और (सिन्धवः मधु क्षरन्ति) नदियाँ भी आनन्द प्रदान करती हैं। हे प्रभो तथा विद्वज्जनो! ऐसी कृपा करो कि (ओषधीः नः माध्वीः सन्तु) औषधियाँ तथा अन्नादिक पदार्थ सभी हमारे लिए आनन्ददायक हो।

भावार्थ यह है कि सत्याचरण से प्रकृति की सभी वस्तुएँ प्रभु की कृपा से सुख और आनन्द को देनेवाली हो जाया करती हैं।

पद्यानुवाद

सत्यमय जीवन है जिंसका, सत्यमय है आचरण।
नदियाँ उसे देतीं मधुर जल, आनन्द देता है पवन।।
मधु देंगी औषधियाँ सभी ये, रोगनाशक होंगी सारी।
कल्याण ही कल्याण होगा, रह न सकती है बीमांरी।।
इस हेतु हम हों सत्यवादी, सत्यमय ही हो आचरण।
सब ओर से शान्ति मिलेगी, दुःख का होगा शमन।।

29. काल और स्थान सभी आनन्ददायक होंगे।

मधु नक्तमुतोषसो मधुमत् पार्थिवं रजः। मधु द्यौरस्तु नः पिता।।

(देवता-विश्वेदेवाः) ऋ०/1/90/7

अन्वय तथा सरलार्थ

(नक्तम् उत उषसः मधु) हमारे लिए रात और उषःकाल सभी सुखकारी हों, (पार्थिव रजः मधु) भूमि की धूल और मिट्टी भी हमें अन्नादिक देकर आनन्दमय हों और (नः पिता द्यौः मधु अस्तु) हमारा पालक सूर्य भी सुखकारी हो।

पिछले मन्त्र से 'ऋतायते' की अनुवृत्ति करने पर भावार्थ यह हुआ कि रात-दिन, भूमि की धूलि और सूर्य आदि सत्याचरण करनेवाले के लिए आनन्दमय हो जाते हैं।

पद्यानुवाद

हम बनें यदि सत्यवादी, दिनरात हितकारी बनेंगे।
वसुधा की मिट्टी भी फलेगी, फल-फूल अन्नादिक मिलेंगे।।
जो शक्ति है बरसा रहा, वह सूर्य सुखदायी बनेगा।
ऋतुएँ सभी आएँगी क्रम से, वातावरण मंगल करेगा।।
इस हेतु सत्य का आचरण, हम सब को करना चाहिए।
झूठ के व्यवहार से तो दूर रहना चाहिए।।

30. भगवान् बुद्धि और शक्ति के प्रदाता हैं।

त्वामग्ने वाजसातमं विप्रा वर्धन्ति सुष्टुतम्। स नो रास्व सुवीर्यम्।।

(देवता-अग्निः) ऋ०/5/13/5

अन्वय तथा सरलार्थ

(अग्ने, वाजसातमम्) हे प्रकाशमय प्रभो! सबको अन्न, ज्ञान, बल के कर्मानुसार बाँटनेवाले (सु-स्तुतम् त्वाम्) अच्छी प्रकार स्तुति किए गए आपको (विप्राः वर्धन्ति) ज्ञानी लोग अपने हृदय में बढ़ाते हैं अर्थात् स्तुति और भक्ति द्वारा आपका साक्षात्कार करते हैं। (सः नः सुवीर्यम् रास्व) इस प्रकार के गुणोंवाले आप हमें उत्तम शक्ति और बल प्रदान कीजिए।

भावार्थ यह है कि अन्न, ज्ञान और बल आदि का बँटवारा करनेवाला भगवान् है। हम श्रेष्ठ कर्म करते हुए उससे प्रार्थना करते हैं कि वह हमें सब प्रकार से शक्ति दे और समर्थ बनाए।

पद्यानुवाद

हे प्रकाशमय, सबके नायक, आप अन्न-बल-ज्ञान प्रदायक।
विद्वानों से हो सदा प्रशंसित, हृदयों में हो जाते विराजित।।
हम भी स्तुतियाँ करें आपकी, मन-मन्दिर में सदा बिठावें।
देते हो सामर्थ्य शक्तियाँ, आपसे ही हम यह सब पावें।
हमें शक्ति प्रभु ऐसी दे ,दो, विश्व में निर्बल नहीं कहावें।
पाकर शक्ति आपसे ऐसी, श्रेष्ठ कार्य में उसे लगावें।।

31. प्रभु-कृपा से ही श्रेष्ठ गुरु मिलते हैं।

सं पूषन् विदुषा नय योऽञ्जसा अनुशासति। य एवेदमिति ब्रवत्।।

(देवता-पूषा) ऋ॰/6/54/1

अन्वय तथा सरलार्थ

(पूषन्) हे सबका पालन-पोषण करनेवाले प्रभो! (विदुषा सम् नय) आप हमें ऐसे विद्वान् से मिला दीजिए (यः अञ्जसा अनुशासति) जो बहुत ही सरल विधि से हमें सुशिक्षित कर दे और (यः इदमेव इति ब्रवत्) जो प्रत्येक वस्तु का ठीक-ठीक ज्ञान क़रा दे और बताए कि यह बात ठीक इसी प्रकार है, उसमें सन्देह तथा भ्रांति का नामोनिशान भी न हो।

भावार्थ यह है कि प्रभु की कृपा से ही ऐसे आप्त पुरुषों, विद्वानों का मेल हो पाता है, जो यथार्थ ज्ञान के धनी होते हैं और जिनमें सन्देह या भ्रम नहीं होता। ऐसे विद्वान् यदि सरलता से शिक्षा देंगे, तो अवश्य शिष्य का कल्याण ही होगा।

पद्यानुवाद

पालक-पोषक सबके प्रभुवर, उस विद्वान् से मेल करा दो।
सरल विधि से जो समझा दे, भ्रान्त-ज्ञान से रहित ही जो हो।।
आपकी कृपा से ही मिलते हैं, मानव को जब उत्तम गुरुजन।
कल्याण तभी उसका है होता, ज्ञान से उज्ज्वल होता तन-मन।।
हों विद्वान् हमारे गुरुजन, सत्पथ का ही मार्ग दिखाएँ।
सरल विधि से गूढ़ तत्त्व सब, सत्यरूप में सब समझाएँ।।
ऐसे गुरुजन आपसे हमको, सरल विधि से मिला सकते।
पतितों को भी पावन करके, मुक्ति-मार्ग दिखला सकते।।

32. प्राणायाम संयम का द्वार।

गूहता गुह्यं तमो, वि यात विश्वमत्रिणम्। ज्योतिष्कर्त्ता यदुश्मसि।।

(देवता–मरुतः) ऋ॰/1/86/10

अन्वय तथा सरलार्थ

(मरुतः) हे मेरे प्राणो, (गुह्यं तमः गूहत) हृदय में छिपे हुए अज्ञानान्धकार को नष्ट कर दो। (अत्रिणम् विश्वम् वियात) ज्ञान को खा जानेवाले इस सम्पूर्ण अन्धकार को नष्टकर दो। (यत् उश्मसि, ज्योतिः कर्त्ता) हम जिसे चाहते हैं, उस प्रकाश को उत्पन्न कर दो।

भावार्थ यह है कि प्राणों के संयम से मन की चंचलता मिट जाती है। तब ज्ञान–ज्योति प्राप्त होती चली जाती है और अज्ञान का अन्धेरा मिटता चला जाता है। अतः प्राणायाम द्वारा मन तथा इन्द्रियों के विकारों को नष्ट करना चाहिए।

पद्यानुवाद

प्राण–शक्ति को सदा बढ़ावें, करके प्रतिदिन प्राणायाम।
वश में इसी से हो सकते हैं, क्रोध–लोभ तथा मद–काम।।
प्राणों के आयाम से होगी, दिव्य–ज्योति की प्राप्ति हमें।
नाश तमोगुण का तब होगा, यदि हम प्राणायाम करें।।
कामादिक जो शत्रु छिपे हैं, सद्गुण वे सब खाते हैं।
प्राणायाम की शक्ति से ही, वे वश में हो जाते हैं।।
इसीलिए कर्त्तव्य यही है, प्राणों का आयाम करें।
प्राणशक्ति को खूब बढ़ाएँ, मुक्तिपथ पर बढ़े चलें।।

33. सबसे बड़ा सहायक प्रभु है।

आ हि ष्मा सूनवे पितापिर्यजत्यापये। सखा सख्ये वरेण्यः।।

(देवता-अग्निः) ऋ॰/1/26/3

अन्वय तथा सरलार्थ

(पिता सूनवे हि स्म आयजति) पिता पुत्र को निश्चयपूर्वक सब कुछ देता है। (आपिः आपये यजति) बन्धु बन्धु के लिए देता है और (वरेण्यः सखा सख्ये यजति) श्रेष्ठ मित्र अपने मित्र के लिए सब कुछ समर्पण कर दिया करता है।

भावार्थ यह है कि पिता, बन्धु और मित्र के त्याग का वर्णन कर भक्त भगवान् से प्रार्थना करता है कि जैसे पिता पुत्र के लिए, बन्धु बन्धु के लिए और मित्र मित्र के लिए आवश्यकता पड़ने पर सहायता दे देता है, इसी प्रकार आप भी हमारे पूर्ण सहायक बनिए, क्योंकि आप हमारे पिता, बन्धु और मित्र सभी कुछ हैं।

पद्यानुवाद

पुत्र का पालन तथा रक्षण भी करता है पिता।
बन्धु का बान्धव सहायक कष्ट में बनता सदा।।
श्रेष्ठ मित्र सुमित्र का उत्कर्ष ही है चाहता।
कल्याण करता उसको देकर धन-सहित सहायता।।
हे ईश! तुम तो हो पिता, तुम बन्धु हो मेरे तथा।
तुम मित्र भी हो नाथ मेरे, तुम सहायक सर्वथा।।
सब भाँति होकर के सहायक, पूर्णतः सब काल में।
दुःख की काली घटा में, उग्र संकट-जाल में।।
इस हेतु प्यारे ईश! तुमको साथ समझूँ सर्वदा।
भूलूँ नहीं मैं आपको, विपदा हो या हो सम्पदा।।

34- ईश ही देवों के देव हैं।

यच्चिद्धि शश्वता तना देवं देवं यजामहे। त्वे इद्धूयते हविः।।

(देवता-अग्निः) ऋ॰/1/26/6

अन्वय तथा सरलार्थ

(शश्वता तना यत् चित् हि) पर्याप्त समय से हम लोग जो कुछ भी (देवं देवं यजामहे) भिन्न-भिन्न देवों को आहुतियाँ दे रहे हैं, (त्वे इत् हविः हूयते) आप में ही प्रत्येक देवता की आहुति पहुँच जाती है।

भावार्थ यह है कि हम 'अग्नये, सोमाय, प्रजापतये' आदि देवों के नाम से 'स्वाहा' शब्द बोलकर जो भी आहुति देते हैं, वह वस्तुतः आपको ही दी जाती है, क्योंकि सब देवों में महादेव तो आप ही हैं और आप में ही सब देव समाए हुए हैं। उन देवताओं के नामों से भी हम आपको ही पुकारते हैं।

पद्यानुवाद

अग्नि, वरुण, यम, सोम आदि देवता जो अनेक हैं।
वे आप में ही हैं समाए, आप केवल एक हैं।।
इस हेतु हम जो आहुति देते किसी भी देव को।
वह पहुँचती है आपको, नाम चाहे कोई हो।।
चिरकाल से हम यज्ञ करते आ रहे हैं इस तरह।
आपको ही भेंट है, शाम हो या हो सुबह।।
इस भांति देवों के यजन से आपको हम पा रहे।
आप का पूजन हैं करते, आप तक हम आ रहे।।

35. प्रभु से रक्षित विजयी होते।

यमग्ने पृत्सु मर्त्यं अवा वाजेषु यं जुनाः। स यन्ता शश्वतीरिषः।।

(देवता-अग्निः) ऋ०/1/27/7

अन्वय तथा सरलार्थ

(अग्ने यं मर्त्यं पृत्सु अवाः) हे प्रकाशस्वरूप अग्रनायक प्रभो! आप जिस मनुष्य की युद्धों में, संघर्षों में रक्षा करते हैं और (यं वाजेषु जुनाः) जिसको आप युद्धों में गति देते हैं, उत्साहित करते हैं (सः शश्वतीः इषः यन्ता) वह सदा अपनी इच्छाओं को पूर्ण करता तथा अंन्नादिक प्राप्त करता है।

भावार्थ यह है कि प्रभु की कृपा-दृष्टि जिस पर हो जाती है, वह मनुष्य प्रत्येक संघर्ष में सफलता प्राप्त करता है और उसकी सभी उचित इच्छाएँ पूर्ण होती हैं।

पद्यानुवाद

रणभूमि में हे अग्रनायक, जिसके रक्षक आप हैं।
रहता सुरक्षित वह सदा, पाता नहीं सन्ताप है।।
जो आप से उत्साह लेकर, कर रहा संघर्ष है।
होती सदा उसकी विजय, पाता वही सुख-हर्ष है।।
ऐश्वर्य सब पाता वही, है पूर्ण होती कामना।
आपका कर ध्यान, पाता बीरता की भावना।।
हम भी सफलता हेतु, चाहें आप की ऐसी कृपा।
उत्साहपूर्ण सदा रहें, होवें निराश न सर्वथा।।

36. प्रभु ही सच्चे शान्तिप्रदाता हैं।

अपां मध्ये तस्थिवांसं तृष्णाऽविदत् जरितारम्। मृंडा सुक्षत्र मृडय।।

(देवता-वरुणः) ऋ॰/7/89/4

अन्वय तथा सरलार्थ

(अपां मध्ये तस्थिवांसम् जरितारम्) पानी के बीच में भी ठहरे हुए मुझ स्तोता को (तृष्णा अविदत्) प्यास लग रही है। (सुक्षत्र मृडा, मृडय) हे कष्ट से बचाने वाले परमेश्वर! मुझे सुखीकर, मुझे सुखी करा दे; मेरी प्यास मिटा दे।

भावार्थ यह है कि आनन्दरूप भगवान् हमारे सभी ओर हैं, फिर भी हमें आनन्द की प्राप्ति उसी प्रकार नहीं हो रही, जिस प्रकार जल में खड़े मनुष्य को प्यास सता रही हो। इस व्याकुलता की दशा में प्रभु की कृपा ही सहायक हो सकती है। वही ऐसे साधन जुटा सकता है, जिससे हमारा ठीक पथ-प्रदर्शन हो और हम प्रभु के आनन्दमय स्वरूप से आनन्द को प्राप्त कर सकें।

पद्यानुवाद

आनन्दमय प्रभु पास मेरे, फिर भी मैं व्याकुल हूँ ऐसे।
जल में खड़ा भी मनुज प्यासा सर्वथा रहता है जैसे।।
अज्ञानवश तव दर्शनों से वंचित हुआ हूँ हे प्रभो।
अज्ञान मेरा दूर कर दो, आपका जिससे मिलन हो।।
दुःखहर्त्ता हे प्रभो! यह प्यास मेरी दो मिटा।
कर दो सुखी मुझको प्रभो, आनन्द-रस मुझको पिला।।
आनन्दमय ईश्वर! तुम्हारे रूप का मैं पान कर।
तृप्त हो जाऊँगा भगवन्! आप का शुभ ध्यान कर।।
प्यास मिट जाएगी मेरी, शान्ति-सुख मिल जाएगा।
आनन्द उमड़ेगा हृदय में, मन तृप्ति पूरी पाएगा।।

ऊँचे पर्वत, गहरे सागर उसकी महिमा कहते हैं।

37. यस्येमे हिमवन्तो महित्वा, यस्य समुद्रं रसया सहाहुः। यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू, कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

(देवता-कः) ऋ०/10/121/4

अन्वय तथा सरलार्थ

(इमे हिमवन्तः यस्य महित्वा आहुः) ये ऊँचे-ऊँचे हिमवान् पर्वत जिसकी महिमा का वर्णन कर रहे हैं, (रसया सह यस्य समुद्रम् आहुः) पृथ्वी सहित सम्पूर्ण सागर जिसके वश में है, (इमाः प्रदिशः यस्य बाहू) ये दिशाएँ और उपदिशाएँ फैली भुजाओं के समान जिसके विस्तार का वर्णन कर रही हैं, (कस्मै देवाय हविषा विधेम) उस प्रजापति सुखदाता ईश्वर का ध्यान हम पूर्ण श्रद्धा और भक्ति से करें।

भावार्थ यह है कि परमात्मा की विशालता का वर्णन प्रकृति की प्रत्येक वस्तु कर रही है। वह ही इस सृष्टि का रचयिता तथा सुखस्वरूप है। हमें चाहिए कि सुख-शान्ति को प्राप्त करने के लिए उसकी विशालता का अनुभव कर हम उसकी भक्ति में चित्त लगावें।

पद्यानुवाद

हिम आच्छादित गिरिवर जिसकी गुणगाथा को गाते हैं।
तरल-तरंग पूर्ण ये सागर, जिसे असीम बताते हैं।।
फल-फूलों को देने वाली भूमि रचना है जिसकी।
सृष्टि का हर कण-कण भी तो महिमा गाता है उसकी।
ये असीम दिशाएँ जिसकी भुजामात्र कहलाती हैं।
जो अनन्त सुखमय जगदीश्वर का ही बोध कराती हैं।।
उसके गुण-गण का ही हम सब पूर्ण भक्ति से गान करें।
नम्र हृदय से सुखमय प्रभु का प्रतिदिन हम आह्वान करें।।

38. वरुण के अटल नियम में हैं चाँद-सितारे।

**अमी य ऋक्षा निहितास उच्चा नक्तं ददृशे कुह चिद्दिवेयुः।
अदब्धानि वरुणस्य व्रतानि, विचकाशच्चन्द्रमा नक्तमेति।।**

(देवता-वरुणः) ऋ०/1/24/10

अन्वय तथा सरलार्थ

(अमी ये ऋक्षाः उच्चाः निहितासः) वे जो तारे ऊँचाई पर रखे गए हैं अर्थात् विराजमान हैं, वे (नक्तम् ददृशे) रात में ही दिखाई देते हैं, परन्तु (दिवा कुह चित् ईयुः) दिन में वे कहाँ चले जाते हैं? (वरुणस्य व्रतानि अदब्धानि) उस श्रेष्ठतम प्रभु के अटल नियम हैं, उन्हीं के अनुसार (चन्द्रमाः नक्तं विकाशत् एति) चन्द्रमा भी रात में ही चमकता हुआ प्रकट होता है।

भावार्थ यह है कि दिन को तारे और चाँद इसलिए दिखाई नहीं देते, क्योंकि वरुण के अटल नियम से बँधे होने के कारण दिन के समय उनका प्रकाश सूर्य के प्रकाश में लीन हो जाता है, परन्तु रात के समय सूर्य का प्रकाश न होने के कारण तारे और चाँद स्पष्ट देखे जा सकते हैं।

पद्यानुवाद

जगमग-जगमग करते तारे निशाकाल में जो हैं दिखते।
दिन में सभी कहाँ छिप जाते, टिम-टिम क्यों हैं नहीं वे करते।।
वरुणदेव के अटल नियम जो, कौन टाल सकता है उनको।
रहकर उसके अटल नियम में, छिप जाते निस्तेज मन्द हो।।
सूर्यदेव की उग्र ज्योति में, दीप्ति होती उनकी मन्द।
सूर्यदेव जब छिप जाते हैं, टिम-टिम करते वे स्वच्छन्द।।
उसी काल में चन्द्रदेव भी, अपना मुख दिखलाता है।
शीतल निज आलोक से तब वह रजनी को चमकाता है।।
उस ईश्वर के, वरुणदेव के शासन में सब रहते हैं।
अपनी सत्ता से ही ये सब, उसकी सत्ता कहते हैं।।

39. विश्व के स्त्रष्टा को अपनाएँ।

इह त्वष्टारमग्रियं विश्वरूपमुपह्वये। अस्माकमस्तु केवलः।।

(देवता-त्वष्टा) ऋ॰/1/13/10

अन्वय तथा सरलार्थ

(इह अग्रियम् विश्वरूपम् त्वष्टारम् उपह्वये) मैं अपने हृदय-मंदिर में सबसे प्रमुख, संसार की सभी आकृतियों को बनाने वाले और उन्हें घड़ने वाले परमेश्वर को बुलाता हूँ अर्थात् उसकी उपासना करता हूँ। (केवलः अस्माकम् अस्तु) वह एकमात्र ही हमारा हो जाए।

भावार्थ यह है कि संसार की सभी मौलिक वस्तुओं के आकार-प्रकार की रचना वह भगवान् ही करता है। सूर्य, चन्द्र, तारे, मानव, पशु-पक्षी सभी को वह ही आकार प्रदान करता है। केवल वही एक उपासना के योग्य है। इसलिए उसे हृदय-मंदिर में ध्यानपूर्वक अपना सहायक बनाना चाहिए। वह यदि अपना बन जाए तो सम्पूर्ण संसार अपना हो जाएगा।

पद्यानुवाद

सबसे प्रमुख जो रचयिता, हैं लोक जिसमें सब समाए।
जो है विधाता हम सभी का, चर-अचर जिसने बनाए।।
उसका हृदय में ध्यान करके, उसकी महिमा जो समझता।
आनन्द-सुख का स्रोत उसके ही हृदय में सतत बहता।।
संसार के सब रूठ जाएँ प्रिय तथा जो मित्रगण हैं।
रूठे नहीं पर वह विधाता, वह ही सबसे श्रेष्ठ धन है।।
वह हमारे साथ है यदि, सब हमारे साथ होंगे।
मित्रजन भी होंगे अपने, हम कभी न अनाथ होंगे।।
इसलिए उसको कभी भी, भूलना नहीं चाहिए।
बस श्रद्धा-भक्ति से उसी का ध्यान करना चाहिए।।

40. प्रातः-सायं प्रभु को ध्यावें।

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे। जुहूमसि द्यवि-द्यवि।।

(देवता-इन्द्रः) ऋ॰/1/4/1

अन्वय तथा सरलार्थ

(इव गोदुहे सुदुघाम्) जिस प्रकार दूध दुहनेवाला दूध की प्राप्ति के लिए खूब दूध देनेवाली गाय को प्रेम से पुकारता है, उसी प्रकार (ऊतये सुरूपकृत्नुम् द्यवि-द्यवि जुहूमसि) हम लोग अपनी रक्षा, उत्साह, शोभा और सुन्दर जीवन के लिए उस सुन्दर रूप के स्रष्टा परमैश्वर्यशाली इन्द्र को प्रतिदिन बुलायें, अर्थात् उसकी प्रतिदिन प्रेम और श्रद्धा से उपासना करें, जिससे हमारी रक्षा हो तथा जीवन में उत्साह, सौन्दर्य और प्रगति हो।

पद्यानुवाद

दुग्ध चाहने वाला दोग्धा, ज्यों दोग्ध्री की सेवा करता।
उसे पुकारता प्रेम से प्रतिदिन, उसके कष्टों को है हरता।।
उसी भाँति हम करें साधना, प्रतिदिन उस परमेश्वर की।
वह सौन्दर्य-स्वास्थ्य का दाता, देता जीवन में गति भी।।
वही प्रभु है रक्षक सबका, उससे रक्षण पाने को।
विघ्न सभी हर लेने के हित, जीवन सफल बनाने को।।
प्रतिदिन प्रातःसायम् उसका संग मनुज जो करता है।
सभी सुखों को है वह पाता, पाप-कर्म से बचता है।।

41. ईश्वर भक्तों को सब कुछ देता।

पूर्वीरिन्द्रस्य रातयो, न विदस्यन्त्यूतयः। यदि वाजस्य गोमतः स्तोतृभ्यो मंहते मघम्।।

(देवता-इन्द्रः) ऋ०/1/11/3

अन्वय तथा सरलार्थ

(इन्द्रस्य रातयः पूर्वीः) उस परमैश्वर्यशाली परमात्मा के दान प्राचीनकाल से सभी प्राणियों को प्राप्त हो रहे हैं। (ऊतयः न विदस्यन्ति) उसके रक्षा आदि के साधन कभी नष्ट नहीं होते, अर्थात् सूर्य, नदियाँ, वायु, अन्न आदि पदार्थ कभी समाप्त नहीं होते। (गोमतः वाजस्य यत् इ) भूमि, गौओं और अन्न आदि का देने वाला जो इन्द्र है, वही (स्तोतृभ्यः मघम् मंहते) अपने स्तोताओं, भक्तों और उपासकों को पूर्ण ऐश्वर्य प्रदान करता है।

भावार्थ यह है कि परमात्मा प्राणियों के जीवन की सामग्री निरन्तर दे रहा है परन्तु जो उसके उपासक हैं, उन्हें उसकी कृपा से सभी प्रकार का ऐश्वर्य प्राप्त हो जाता है और उनके पास किसी वस्तु की कमी नहीं रहती।

पद्यानुवाद

उस इन्द्र के सब दान मिलते हैं पुरातनकाल से।
रक्षाएँ उसकी क्षीण होती हैं नहीं किसी चाल से।।
वह अन्न देता है हमें, वह भूमि-पशु भी दे रहा।
वह इन्द्र निज भक्तजन की, इच्छाएँ पूरी कर रहा है।।
जल वायु रवि शशि भी बनाए उसने हम सबके लिए।
भूमि भरी धन-धान्य से, उसने ही भक्तों के लिए।।
सब कुछ प्रदाता ईश का हम धन्यवाद सदा करें।
उसके प्रति हम नम्र हो, श्रद्धा से निज मन को भरें।।

42. प्रभु ही सद्बुद्धियों और सत्कर्मों का प्रेरक है।

यस्माद् ऋते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन। स नो धीनां योगमिन्वति।।

(देवता-सदसस्पतिः) ऋ॰/1/18/4

अन्वय तथा सरलार्थ

(यस्मात् ऋते) जिस विश्व के अध्यक्ष, सर्वप्रकाशक प्रभु के बिना (विपश्चितः चन यज्ञः न सिध्यति) बड़े-बड़े बुद्धिमानों और विद्वानों के भी दान, संगठन आदि यज्ञकर्म सफल नहीं हो पाते, (सः नः धीनाम् योगम् इन्वति) वही प्रभु हमारी बुद्धियों को और कर्मों को प्रेरित करता है और उन्हें अपने सहयोग से पूर्ण कर देता है।

भावार्थ यह है कि प्रभु की कृपा से ही बुद्धिमानों और विद्वानों को अपने कर्मों में सफलता मिल सकती है, अन्यथा नहीं। अतः हमें प्रकाशस्वरूप सबके अन्दर विराजमान प्रभु को सदा याद रखना चाहिए और उससे प्रेरणाएँ लेते रहना चाहिए।

पद्यानुवाद

जिसके बिना न यज्ञ कोई सिद्ध हो सकता कभी।
निपुण बुद्धिमान भी निष्फल हैं हो जाते सभी।।
सुजन बुद्धिमान करते, जिस प्रभु की उपासना।
वह ही देता बुद्धियों में, ईश अद्भुत प्रेरणा।।
निज बुद्धि को कर शुद्ध, प्रभु से जो मिलाता ध्यान में।
तीक्ष्ण बुद्धि वह ही पाता, ईश से वरदान में।।
सब समस्याएँ सुलझ जातीं, कठिन से भी कठिनतर।
जब मनुज है ज्ञान पाता, ईश का स्थिर ध्यान कर।।

43. ज्ञानी भक्त सदा ही ईश्वर को देखते रहते हैं।

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्।।

(देवता-विष्णुः) ऋ॰/1/22/20

अन्वय तथा सरलार्थ

(सूरयः विष्णोः तत् परमं पदम्) विद्वान् लोग सर्वव्यापक प्रभु के उस सर्वश्रेष्ठ प्राप्तव्य स्वरूप का ऐसे (सदा पश्यन्ति) दर्शन कर लेते हैं, (इव आततम् चक्षुः दिवि पश्यति) जैसे खुली आँख आकाश में सूर्य के दर्शन कर लेती है।

भावार्थ यह है कि हम जैसे खुली आँख से आकाश में सूर्य को देख लेते हैं, उसी प्रकार प्रभु का स्थिर चित्त से ध्यान करने वाले विद्वान् लोग अपनी आत्मा में प्रभु का अनुभव कर लेते हैं।

पद्यानुवाद

आनन्दमय जो सर्वव्यापक विश्व में भगवान् है।
आनन्द ही तो उस प्रभु का प्राप्य पद या स्थान है।।
विद्वान् धार्मिक लोग आत्मा में उसे हैं देखते।
आनन्द का अनुभव हैं करते, सब दुखों से छूटते।।
सूर्यदेव की ज्योति में हैं देखते ये नेत्र जैसे।
उस विष्णु-पद को देखते, विद्वान भी आत्मा में वैसे।।
एकाग्र होकर करेंगे उस प्रभु का ध्यान जब हम।
मिट जाएँगे तब क्लेश सारे, आनन्द भी पाएँगे हम।।

44. जागरूक ही प्रभुदर्शन पा सकते हैं।

तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते। विष्णोर्यत् परमं पदम्।।

(देवता-विष्णुः) ऋ०/1/22/21

अन्वय तथा सरलार्थ

(विष्णोः यत् परमं पदम्) सर्वव्यापक प्रभु का जो उत्कृष्ट आनन्दमय प्राप्तव्य स्वरूप है, (तत् जागृवांसः विपन्यवः विप्रासः समिन्धते) उस स्वरूप को जागरूक रहनेवाले और विविध प्रकार से स्तुति करनेवाले मेधावी लोग अपनी आत्मा में प्रदीप्त करते हैं और उस स्वरूप में लीन हो जाते हैं।

भावार्थ यह है कि प्रभु के आनन्दस्वरूप को पाने के लिए सावधान होकर उसके गुणों और कर्मों का गान करना चाहिए।

पद्यानुवाद

उस विष्णु के उत्कृष्ट पद को वे ही पाते हैं सदा।
सुमति हो जो नियम से गुणगान करते सर्वदा।।
जागरूक सदा जो रहते, करते कभी न प्रमाद जो।
ध्यान में हो मगन प्रभु से ही करें संवाद जो।।
विविध रूपों से स्तुति कर, उससे मिलते जो सुधी।
आनन्द पा उस ईश से, हैं सर्वथा होते सुखी।।

45. सत्य बहरों के भी कान खोल देता है।

ऋतस्य हि शुरुधः सन्ति पूर्वीर्ऋतस्य धीतिर्वृजनानि हन्ति।
ऋतस्य श्लोको बधिराततर्द, कर्णा बुधानः शुचमान आयोः।।

(देवता-इन्द्रः) ऋ०/4/23/8

अन्वय तथा सरलार्थ

(ऋतस्य शुरुधः पूर्वीः हि सन्ति) सत्य की शोकनिवारक सम्पत्तियाँ पुरातनकाल से ही चली आ रही हैं। (ऋतस्य धीतिः वृजनानि हन्ति) सत्य के अपनाने से सभी बुरी प्रवृत्तियाँ और पाप नष्ट हो जाते हैं। (ऋतस्य श्लोकः बुधानः शुचमानः) सचाई की आवाज जगानेवाली और तेजस्वी होती है। वह तो (आयोः बधिरा कर्णा आततर्द) मनुष्य के बहरे कानों को भी तीक्ष्णता से खोल देती है।

भावार्थ यह है कि सत्य के अपनाने से मनुष्य पापों से बच जाता है और सच्ची बात तो बहरे लोगों के भी कान खोलकर उन्हें सच्चाई मानने को विवश कर देती है।

पद्यानुवाद

आदिकाल से सत्य की शक्ति, शोकनिवारक कही गई।
सत्यकथन जो करता मानव, चिन्ता उसकी दूर हुई।।
सत्य का भाषण जो करता है, नष्ट हैं होते उसके पाप।
इसीलिए वह शान्त है रहता, पास न आता है सन्ताप।।
सत्य-ध्वनि सबको है जगाती, ओजस्वी वह होती है।
बहिरों के भी कान खोलती, और मलिनता धोती है।।
सत्य का भाषण सिर पर चढ़कर, झूठ को सदा दबाता है।
इसीलिए झूठे का सिर तो, लज्जा से झुक जाता है।।

46. तपस्वी ही ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते, प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः।
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद् वहन्तस्तत्समाशत।।

(देवता-पवमानः सोमः) ऋ॰/9/83/1

अन्वय तथा सरलार्थ

(हे ब्रह्मणस्पते पवमान सोम) हे ज्ञान के भण्डार विश्वपति पवित्रता के प्रेरक प्रभो (ते पवित्रम् विततम्) संसार को पवित्र करनेवाला तेरा ज्ञान और अन्य साधन सब ओर फैले हुए हैं। (प्रभुः गात्राणि विश्वतः पर्येषि) हे सोम! आप सब प्रकार से समर्थ हैं और हमारे शरीरों के सभी ओर व्यापक हैं, परन्तु (अतप्ततनुः आमः तद् न अश्नुते) तपस्या से हीन शरीर वाला व्यक्ति कच्चा होने के कारण आप की पवित्रता के साधनों ज्ञान आदि को नहीं समझ पाता। हाँ, (शृतासः इत् वहन्तः तत् समाशत) जो लोग निरन्तर तप द्वारा साधना करके पक चुके हैं, वे ही आप के पवित्र स्वरूप और आपके दिए ज्ञान आदि साधनों को धारण करते हुए उस में रम जाते हैं।

पद्यानुवाद

पवमान सोम! पवित्रता के तेरे साधन विश्व में।
सूर्य, वायु, जल तथा पावक सभी हैं विविध ये।।
पर मन पवित्र तो तब है होता, जब तुम्हारा ज्ञान हो।
बन तपस्वी जन जभी करता है तेरे ध्यान को।।
बिन तपस्या के कभी निर्मल न हो सकता हृदय।
बिन तपस्या के नहीं नर मन पे पाता है विजय।।
जो तपस्वी हैं, तुम्हारे ज्ञान-रस का पान कर।
निर्मल-हृदय बनते वही, सर्वस्व तुमको मानकर।।
काम-क्रोधादिक शत्रुओं पर, उनकी होती है विजय।
बन कर तपस्वी शुद्ध हों हम, यह ही तुम से है विनय।।

47. निर्धन को निज धन से उभारो।

पृणीयादिन्नाधमानाय तव्यान् द्राघीयांसमनुपश्येत् पन्थाम्।
ओ हि वर्तन्ते रथ्येव चक्रान्यमन्यमुपतिष्ठन्त रायः।।

(देवता–दानप्रशंसा) ऋ॰/10/117/7

अन्वय तथा सरलार्थ

(तव्यान्) धनी पुरुष (द्राघीयांसं पन्थामनुपश्येत्) जीवन के लम्बे मार्गरूपी काल को देखे और (नाधमानाय इत् पृणीयात्) पीड़ित तथा धनहीन व्यक्ति को अवश्य पुष्ट करे, उसकी सहायता करे। (रायः हि रथ्या चक्रा इव उ आवर्तन्ते) धन–सम्पत्तियाँ तो रथ के पहियों के समान ही घूमती रहती हैं और (अन्यम् अन्यम् उपतिष्ठन्त) एक को छोड़कर दूसरे के पास चली जाती हैं।

भावार्थ यह कि धन–सम्पत्ति किसी के पास स्थायी रूप से नहीं ठहरती। अतः धनी व्यक्ति को चाहिए कि वह अपने धन से असमर्थ लोगों की सहायता कर पुण्य का भागी बने।

पद्यानुवाद

दीन–हीन असमर्थ जनों की करो सहायता निज धन से।
हे धनियो! उपयोग श्रेष्ठ यह, तनिक विचार करो मन से।।
वस्त्रहीन को वस्त्र जुटा दो, उदर क्षुधित जन का भर दो।
अक्षरहीन को साक्षर कर दो, जिससे वह भी शिक्षित हो।।
लंबे–चौड़े जीवन–पथ पर, दृष्टि उठाकर तुम देखो।
आज धनी जो दीख रहा है, कल रोता वह निर्धन हो।।
जैसे पहिए घूम–घूमकर, ऊपर नीचे आते हैं।
उसी भाँति ऐश्वर्य विश्व में, एकत्र नहीं टिक पाते हैं।।
मत समझो स्थिर अपनी लक्ष्मी; चपला यह कहलाती है।
आज तुम्हारे पास दीखती, अन्य की कल हो जाती है।।
दान–पुण्य धनिक जो करता, यश उसको मिल जाता है।
यह लोक सुधरता है उसका, परलोक में वह सुख पाता है।

48. प्रभु-भक्ति में समय लगाओ।

कदा क्षत्रश्रियं नरमा वरुणं करामहे। मृडीकायोरुचक्षसम्।।

(देवता-वरुणः) ऋ॰/1/25/5

अन्वय तथा सरलार्थ

(कदा मृडीकाय उरुचक्षसम् क्षत्रश्रियम् नरम् वरुणम् आ करामहे) वह दिन कब आएगा जब हम अपने पूर्ण सुख के लिए सर्वद्रष्टा और वेदों द्वारा अनेक प्रकार से स्तुति किए गए, सम्पूर्ण विश्व पर शासन करने वाले सर्वरक्षक, सबको सन्मार्ग पर चलाने वाले श्रेष्ठ नेता, सबसे वरने योग्य प्रभु को सिद्ध करेंगे अर्थात् उसके दर्शनों को करने में समर्थ हो सकेंगे।

भावार्थ यह है कि जीवन की घड़ियाँ समाप्त हो रही हैं और हम प्रभु-चिन्तन की उपेक्षा कर रहे हैं। यदि हम पूर्ण सुख पाना चाहते हैं तो हमें सर्वरक्षक उस प्रभु का ध्यान अवश्य करना चाहिए।

पद्यानुवाद

जीवन कितना बीत गया है, नहीं चेत्तना आई है।
लक्ष्य को भूल गए हैं हम सब, नहीं सिद्धि कुछ पाई है।।
भूले-भटके इधर-उधर हम, अन्धी दौड़ लगाते हैं।
इसीलिए तो व्याकुल रहते, शान्ति नहीं हम पाते हैं।।
कौन-सा दिन वह आएगा, जब वरुण को मित्र बनाएँगे।
शासक सबका वह है ईश्वर, उसी से सब सुख पाएँगे।।
बीत गया है व्यर्थ समय कुछ, अब भी होश में आएँ हम।
यदि परम आनन्द की इच्छा, वरुण को मित्र बनाएँ हम।।
वह वरेण्य ही सत्पथदर्शक, वेद स्तवन उसका करते।
वही परम आनन्द को पाते, मन में उसे जो जन धरते।।

49. जाग सवेरे रत्न को पाओ।

प्राता रत्नं प्रातरित्वा दधाति तं चिकित्वान् प्रतिगृह्या निधत्ते।
तेन प्रजां वर्धयमान आयू रायस्पोषेण सचते सुवीरः।।

(देवता-दम्पती) ऋ॰/1/125/1

अन्वय तथा सरलार्थ

(चिकित्वान् प्रातरित्वा) जो ज्ञानी एवं समझदार व्यक्ति प्रातः जागकर गति करता है और (सुवीरः) अच्छा वीर होता है, वह (प्रातः रत्नम् दधाति) सवेरे-सवेरे ही स्वास्थ्य आदि रमणीय वस्तुओं को प्राप्त कर लेता है। (प्रतिगृह्य) उस रत्न को धारण कर (तम् नि धत्ते) नियमपूर्वक अपने पास बनाए रखता है। (तेन रायस्पोषेण प्रजाम् आयुः वर्धयमानः) उस धन की पुष्टि से अपने पुत्र-पौत्रादिकों और आयु को बढ़ाता हुआ संसार में (सचते) शोभा प्राप्त करता है।

भावार्थ यह है कि प्रातःकाल जागना वीरता का कार्य है। जो व्यक्ति प्रातः नियमपूर्वक जागता है, उसे स्वास्थ्य, धन-सम्पत्ति, अच्छी सन्तान और लम्बी आयु प्राप्त होती है। अतः प्रातःकाल उठकर भ्रमण आदि अवश्य करना चाहिए।

पद्यानुवाद

ज्ञानवान् जो प्रातः जागे, श्रेष्ठ वीर कहलाता है।
सदा सवेरे उठकर वह ही स्वास्थ्य-रत्न को पाता है।।
शय्या त्याग कर सुबह-सवेरे, शुभ कर्मों में लग जाता वह।
धन, पुष्टि उत्तम सन्तानें, सभी श्रेष्ठ ही पाता वह।।
दीर्घायु हो जाता है वह, घर को सुखी बनाता है।
गुण-सम्पन्न निरन्तर हो कर, जग में शोभा पाता है।।
इसीलिए तो प्रातः उठना श्रेष्ठ कर्म है कहा गया।
कितना प्रिय वह समय है होता, जब सब दिखता नया-नया।।

50- इन्द्र हमें दो सब धन उत्तम।

इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि, चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे।
पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां, स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम्।।

(देवता-इन्द्रः) ऋ॰/2/21/6

अन्वय तथा सरलार्थ

(इन्द्र) हे सभी प्रकार के ऐश्वर्य के स्वामी! (अस्मे दक्षस्य चित्तिम्) हमारे लिए बल की चेतना अर्थात् सत्प्रयोग का ज्ञान (सुभगत्वम्) अत्युत्तम ऐश्वर्य, (रयीणाम् पोषम्) धनों से पुष्टि प्राप्त करने का ढंग, (तनूनाम् अरिष्टिं) शरीरों का आरोग्य, (वाचः स्वाद्मानम्) वाणी का माधुर्य और (अह्नाम् सुदिनत्वम्) दिनों का ठीक प्रकार से प्रयोग, इस प्रकार के (श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि) सभी उत्तम धनों को धारण करवा दो।

भावार्थ यह है कि हम बल का ठीक प्रयोग करें, और सौभाग्यशाली, स्वस्थ, पुष्ट, मधुरभाषी और दिन को अच्छे प्रकार बिताने वाले बनें।

पद्यानुवाद

हे इन्द्र परमैश्वर्यशालिन्, दीजिए हमको विवेक।
बल का करें उपयोग उत्तम, सत्कर्म हों इससे अनेक।।
दीजिए ऐश्वर्य ऐसा, पुष्टिकारक हो यथा।
आरोग्य देहों में रहे, माधुर्य वाणी में सदा।।
दिन हमारे हों सुदिन, हर्ष हो उल्लास हो।
उत्साह मन में हो तथा, शुभ कर्म में विश्वास हो।।
ये श्रेष्ठ धन सब दीजिए, यह प्रार्थना है आपसे।
संचित करें धन धर्मपूर्वक, दूर रहकर पाप से।।

51. दुष्ट-दलन कर दो हे राजन्।

उलूकयातुं शुशलूकयातुं, जहि श्वयातुम् उत कोकयातुम्।
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुम्, दृषदेव प्रमृण रक्ष इन्द्र।।

(देवता-इन्द्रासोमौ रक्षोहणौ) ऋ०/7/104/22

अन्वय तथा सरलार्थ

(इन्द्र) हे दुष्टों के दण्डदाता राजन् (उलूकयातुम्) उल्लुओं के समान अन्धकार में चोरी-डाके डालनेवालों को, शुशलूकयातुम्) भेड़ियों के समान प्राणियों के मांस खानेवालों को, (श्वयातुम्) कुत्तों के समान अपनी ही जाति को नष्ट करनेवालों को, (उत कोकयातुम् जहि) और चकवे के समान कामान्ध व्यक्तियों को नष्ट कर दो। हे इन्द्र! (सुपर्णयातुम्) बाज के समान दुर्बलों को सताने वालों को तथा (गृध्रयातुम्) दूसरों के धनों का लोभ करनेवालों को (दृषदा इव प्रमृण) ऐसे मसल दो जैसे पत्थर से कोई वस्तु मसली जाती है।

पद्यानुवाद

इन्द्र! तुम्हारा शासन प्यारा, सबका ही हो हितकर रक्षक।
नष्ट करो उन असुरों को, जो अत्याचारी और हैं भक्षक।।
उल्लुओं के सम जो अन्धकार में, चोर-लुटेरे हमले करते।
वृकों सदृश जो मांसाशी बन, जीवनाश नित करते फिरते।।
कुक्कुर-सम जो जाति-विरोधी, चकवों के सम जो कामातुर हैं।
बाज-सदृश जो दुर्बलघातक, ठगविद्या में खूब चतुर हैं।।
गीध-सदृश जो पर-धन लोभी, नोच-नोचकर खाते हैं।
नष्ट करो इन सबको राजन्, ये अशान्ति फैलाते हैं।।
इनको पीस दो पत्थर से तुम, प्रजा की रक्षा इन्द्र! करो।
इन्द्र! नष्टकर दुष्टजनों को, राष्ट्र को शान्ति से भर दो।।

52. आर्य बनाएँ सारे जग को।

इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम्। अपघ्नन्तोऽराव्णः।।

(देवता-पवमानः सोमः) ऋ॰/9/63/5

अन्वय तथा सरलार्थ

हे सबको पवित्र करनेवाले तथा श्रेष्ठ प्रेरणाएँ देनेवाले जगदुत्पादक पवमान सोम! सब लोग (इन्द्रं वर्धन्तः) क्षात्रशक्ति को बढ़ाते हुए (अप्तुरः) कार्यशील होकर (अराव्णः अपघ्नन्तः) दान न देनेवाले कंजूसों को नष्ट करते हुए (विश्वम् आर्यम् कृण्वन्तः) सम्पूर्ण संसार को आर्य, अर्थात् सभी प्राणियों के कल्याण चाहनेवाले श्रेष्ठ व्यक्तियों को बढ़ाने में तत्पर हों।

भावार्थ यह है कि प्रभु की कृपा से हम साहसी और बलवान् बन कर दुष्टों का संहार करते हुए संसार को श्रेष्ठ बनाएँ।

पद्यानुवाद

हे सृष्टि के स्रष्टा नियामक, आप ही पवमान हैं।
करते सभी को पवित्र हैं, अरु कर रहे कल्याण हैं।।
हम क्षात्रबल को नित बढ़ावें, जागे श्रेष्ठ ही वीरता।
इस वीरता से नष्ट हों अन्याय एवं क्रूरता।।
हम कर्मशील बनें, बचें आलस्य और प्रमाद से।
कंजूस हममें कोई न हो, दान दें आह्लाद से।।
हो श्रेष्ठ ही जीवन हमारा, आर्य हम कहला सकें।
आर्यत्व की ले भावना, सब जग को आर्य बना सकें।।
विश्व सारा आर्य हो, सद्भावना का नाद हो।
स्नेह सबमें हो परस्पर, व्यर्थ ही न विवाद हो।

53. सद्बुद्धि की सत्कर्म की लो प्रेरणा प्रभु से सदा।

भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।।

(देवता-सविताः) यजु॰/36/3

अन्वय तथा सरलार्थ

(भूः) हे प्राणों के प्राण, (भुवः) हे दुःखहर्त्ता, (स्वः) हे सुखस्वरूप प्रभो! (सवितुः देवस्य) संसार के उत्पादक और सब के प्रेरक आपके (तत् वरेण्यम् भर्गः धीमहि) विश्व में प्रसिद्ध उस सर्वश्रेष्ठ तेज का हम ध्यान करें जो पापों को नष्ट कर देता है। (यः नः धियः प्रचोदयात्) प्रभो, जो आप हैं, वे ही हमारी बुद्धियों और सत्कर्मों के प्रेरक हैं। अतः सदा आपका ध्यान कर हम सद्बुद्धि और सत्कर्म को करने की प्रेरणा लेते रहें।

पद्यानुवाद

प्राणों के हो प्राण पिता जी, दुःख-कष्ट सब हरते हो।
सुखस्वरूप सुखों के दाता, सुखमय जीवन करते हो।।
सबके प्रेरक, जग-उत्पादक, दिव्यगुणों के हो भण्डार।
आपका तेज जो सर्वश्रेष्ठ है, वह पापों का नाशनहार।।
उसी तेज का ध्यान करें हम, बुद्धि जिससे हो निर्मल।
श्रेष्ठ मार्ग पर चलने के हित, प्रभु जी, दे दो निज सम्बल।।
श्रेष्ठ बुद्धि की श्रेष्ठ कर्म की, हमें प्रेरणा दो ईश्वर।
कृपा तुम्हारी सदा चाहते, कर्म करें शुभ जीवनभर।।

54- झूठ त्यागकर सच अपनाएँ।

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयम् तन्मे राध्यताम्। इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि।।

(देवता-अग्निः) यजु॰/1/5

अन्वय तथा सरलार्थ

(अग्ने व्रतपते! व्रतं चरिष्यामि) हे आगे ले जानेवाले सत्य-भाषण आदि उत्तम व्रतों के पालन करनेवाले प्रभो! मैं व्रत का पालन करूँगा। (इदम् अहम् अनृतात् सत्यम् उपैमि) मैं झूठ से हटकर सत्य को ग्रहण कर रहा हूँ, इसी व्रत को मैं पालना चाहता हूँ। (तत् शकेयम्, तत् मे राध्यताम्) मैं आपकी कृपा से इस व्रत का पालन कर सकूँ, इसके लिए मुझे समर्थ कर दीजिए। हे अग्ने! यही आपसे प्रार्थना है।

पद्यानुवाद

हे अग्रनायक व्रतपते! तुम श्रेष्ठ कर्मों में सहायक।
सत्यव्रत के तुम व्रती हो, सत्यव्रत के हो प्रचारक।।
मैं सत्य के शुभ मार्ग पर, नित चल सकूँ, वह शक्ति दे दो।
स्वार्थ से या मोह से, छोड़ू नहीं मैं सत्य को।।
इस कार्य में मैं सिद्धि पाऊँ, त्यागूँ सदैव असत्य को।
सत्यवादी ही बनूँ मैं, सत्याचरण ही ग्राह्य हो।।
लो, छोड़कर मैं असत्य को, अपना रहा हूँ सत्य को।
संकट भले कितने ही आएँ, कभी न बोलूँ असत्य को।।

55. सबके रक्षक ईश में बुद्धि को निश्चल हम करें।

सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्। सनिं मेधामयासिषम् स्वाहा।।

(देवता-इन्द्रः) यजु०/32/13

अन्वय तथा सरलार्थ

(सदसस्पतिम्) शरीर, समाज, राष्ट्र अथवा विश्वरूपी समाज के पालक और रक्षक (अद्भुतम्) अनुपम, अतुलनीय (इन्द्रस्य प्रियं काम्यम्) जीवात्मा के प्रिय और कामना करने के योग्य तथा (सनिम्) सभी को कर्मानुसार फल देनेवाले परमात्मा में मैं (मेधाम्) अपनी सर्व विषयों को ग्रहण करने वाली बुद्धि को (अयासिषम्) लगाता हूँ, (स्वाहा) यह श्रेष्ठ कथन है।

भावार्थ यह है कि वह ईश्वर ही सबसे अधिक कामना करने योग्य और प्रिय है। अन्य विषयों से बुद्धि को हटाकर उस प्रभु में ही उसे लगाने से जीवात्मा का परम कल्याण हो सकता है।

पद्यानुवाद

इस विश्व का अरु देह का अरु राष्ट्र का है जो पति।
ध्यान उसमें ही लगाएँ, चाहें यदि उत्तम गति।।
उसके समान न दूसरा, अनुपम वही जगदीश है।
कर्मफल जो बाँटता, एक वह ही ईश है।।
वह काम्य है, अरु प्रिय वही, सब प्राणियों के भी लिए।
उसमें लगाएँ मन को स्थिर कर, शान्ति पाने के लिए।।
भूलें नहीं उसको कभी, वह प्रिय हमारा है सखा।
भजनीय वह भगवान् वह, आनन्ददायक वह तथा।।

56- शिव अपनाओ, अशिव को त्यागो।

अश्मन्वती रीयते संरभध्वम्, उत्तिष्ठत प्रतरता सखायः।
अत्रा जहीमोऽशिवा ये असञ्छिवान्वयमुत्तरेमाभिवाजान्।।

(देवता-विश्वेदेवाः) यजु॰/35/10

अन्वय तथा सरलार्थ

(सखायः) हे मित्रो! (अश्मन्वती रीयते) यह पथरीली नदी बह रही है। (सम् रभध्वम्) अच्छी प्रकार मिलकर और सम्भलकर चलो। (उत्तिष्ठत) आलस्य छोड़कर खड़े हो जाओ। (ये अशिवाः असन्, अत्रा जहीमः) जो पदार्थ कल्याणकारी नहीं है, उन्हें हम इसी पार छोड़ दें; (शिवान् अभिवाजान् वयम् उत्तरेम) कल्याणकारी शक्ति और बल देनेवाले पदार्थों को लेकर हम इस नदी के पार हो जाएँ।

भावार्थ यह है कि संसाररूपी पथरीली नदी को पार करने के लिए मिलजुल कर सावधानी से चलना चाहिए। व्यर्थ की वस्तुएँ जमा नहीं करनी चाहिएँ। केवल जीवन के लिए आवश्यक साधनों और उत्तम कर्मों को ही साथ रखना चाहिए। इसी से हम सरलतापूर्वक इस पथरीली नदी को पार कर सकेंगे।

पद्यानुवाद

प्रस्तरमय संसार की सरिता, इसको करना है यदि पार।
सम्भल-सम्भल मिलजुल कर बढ़ना, बड़ी तीक्ष्ण है इसकी धार।।
भुजादण्ड को पकड़ परस्पर, चलो सहारा ले-दे साथ।
अरे देखना बीच धार में, छूटे नहीं तुम्हारे हाथ।।
भाररूप जो व्यर्थ उठाया, उसे छोड़ दो इस ही पार।
कहीं मध्य में नहीं डुबो दे, अशिव उठाया है जो भार।।
मंगलमय ही साथ में रखना, जीवन जिससे चल जाए।
श्रेष्ठ कर्म भी नहीं छोड़ना, सद्गति जिससे मिल जाए।।

57. मित्रभाव से सबको देखें।

दृते दृंह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्। मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।।

(देवता-ईश्वरः) यजु॰/36/18

अन्वय तथा सरलार्थ

(दृते) अविद्यारूपी अन्धकार के विदारक जगदीश्वर! (मा दृंह) मुझे स्नेह का व्रत पालने के लिए दृढ़ कर दो। (सर्वाणि भूतानि मा मित्रस्य चक्षुषा समीक्षन्ताम्) सभी प्राणी मुझे मित्र की दृष्टि से देखें। (अहं सर्वाणि भूतानि मित्रस्य चक्षुषा समीक्षे) मैं भी सब प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखूँ और (मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे) हम सभी परस्पर एक दूसरे को मित्र की दृष्टि से ही देखा करें।

भावार्थ यह है कि हम सभी प्राणियों को अपने समान समझ कर उनके प्रति स्नेह और प्यार दिखाएँ और वे भी हमें प्यार से देखें। हम सबमें प्रेमभाव हो, द्वेष न हो।

पद्यानुवाद

अन्धकार-अज्ञान-विनाशक, हे प्रभुवर! कुछ ऐसा कर दो।
हो प्राणिमात्र में प्रेम परस्पर, द्वेष-भावना कहीं नहीं हो।।
मुझे प्रेम से प्राणी देखें, प्रेम से सबको देखूँ मैं भी।
नहीं द्वेष हो, घृणा नहीं हो, स्नेहपूर्ण हो रहें सभी।।
आप पिता हैं, हम सब बन्धु, ऐसा भाव हृदय में हो।
विश्व-प्रेम का पाठ पढ़ा दो, घृणा-भाव सब दूर करो।।
ऐसी सुमति सबको दे दो, प्राणिमात्र में प्रेम बढ़े।
हिंसा-द्वेष का हो उन्मूलन, उन्नति-पथ पर सभी चढ़ें।।

58- प्रभु की दृष्टि में हम श्रेष्ठ बनें।

दृते दृंह मा। ज्योक् ते संदृशि जीव्यासम्। ज्योक् ते संदृशि जीव्यासम्।।

(देवता-ईश्वरः) यजु०/36/19

अन्वय तथा सरलार्थ

(दृते) हे मोह तथा अज्ञानान्धकार को नष्ट करनेवाले परमेश्वर! (मा दृंह) मुझे व्रत पालने के लिए दृढ़ कर दो। (ते संदृशि जीव्यासम्) भगवन्! मैं आपकी शुभ दृष्टि में रहकर ही जीना चाहता हूँ अर्थात् मैं आपकी नजरों में कभी न गिरूँ, यही मेरी कामना है। (ज्योक् ते संदृशि जीव्यासम् पुनः यही प्रार्थना है कि मैं ऐसे ही शुभ कर्म करता रहूँ, जिनसे आपकी दृष्टि में अच्छा बना रहूँ और इसी रूप में मैं दीर्घायु बन जीना चाहता हूँ।

पद्यानुवाद

तमो-निवारक, पापविभञ्जक, हे दृति मुझको ऐसा कर दो।
शुभ कर्मों में लगा रहूँ मैं, कुत्सित मेरे कर्म नहीं हों।।
जीवनभर तव प्रेम मिले प्रभु, तव दृष्टि में नहीं गिरूँ।
तेरी आज्ञा में ही रहकर, उन्नति-पथ पर सदा बढ़ूँ।।
तेरी शुभ दृष्टि में रहकर, जीना चाह रहा हूँ प्रभुवर।
सतत कृपा तव मुझ पर होवे, शुभ व्रत पालक बनूँ निरन्तर।।

59. अज्ञानान्धकार प्रभुदर्शन में बाधक है।

न तं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या असुतृपा उक्थशासश्चरन्ति।।

(देवता-विश्वकर्मा) यजु॰/17/31

अन्वय तथा सरलार्थ

(यः इमा जजान) हे मनुष्यो! जिस विश्वकर्मा ने इन सभी लोक-लोकान्तरों को बनाया है, (न तं विदाथ) तुम उसको नहीं जानते। वह तो (युष्माकमन्तरम् अन्यत् बभूव) तुमसे भिन्न होता हुआ भी तुम्हारे अन्दर विराजमान हो रहा है। (नीहारेण प्रावृताः) अज्ञानरूपी कुहरे से ढके हुए, (जल्प्याः) व्यर्थ की बातें बनाने वाले, (असुतृपः) अपने प्राणों की पुष्टि में ही लगे हुए और (उक्थशासः) बहुत बातें बनाकर बोलनेवाले लोग (चरन्ति) खाने-पीने तथा भोग भोगने में ही जीवन बिता रहे हैं।

भावार्थ यह है कि वह सर्वस्रष्टा प्रभु सर्वत्र अन्दर-बाहर व्यापक हो रहा है, परन्तु अज्ञान के कारण हम उसे नहीं देख पाते। आवश्यकता इस बात की है कि बहुत बातें बनाने की अपेक्षा भोग-विलास से हटकर हम उसका ध्यान करें और उसके सच्चे स्वरूप को समझकर उस आनन्दमय के आनन्द का अनुभव करें।

पद्यानुवाद

सब भुवनों का जो है स्रष्टा, विश्वकर्मा कहलाता है।
सूर्यचन्द्र सब तारकगण भी, एक वही चमकाता है।।
नहीं जान पाते तुम उसको, तुमसे भिन्न वह ईश्वर है।
छिपा हुआ तुम सबके अन्दर, वह स्रष्टा जगदीश्वर है।।
अज्ञान-तिमिर से ढके हुए जन, बातें खूब बनाते हैं।
प्राणतृप्ति में लगे हुए वे, उसे समझ नहीं पाते हैं।।
भक्तिभाव से रहित उन्होंने वाग्जाल फैलाया है।
खाना-पीना भोग भोगना, जीवन-लक्ष्य बनाया है।।
जान नहीं सकते वे उसको, जीवन वृथा बिताते हैं।
मानव-जीवन को भी पाकर, पशुओं सम रह जाते हैं।।

60. सर्वव्यापक प्रभु हमें सर्वत्र निर्भय कर दें।

यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु। शन्नः कुरु प्रजाभ्यो अभयं नः पशुभ्यः।।

(देवता-ईश्वरः) यजु॰/36/22

अन्वय तथा सरलार्थ

(यतः यतः समीहसे) हे ईश्वर! जिस-जिस स्थान पर भी आप अपने स्वभाव से चेष्टा करते हैं (ततः नः अभयम् कुरु) वहाँ-वहाँ से हमें निर्भय कर दीजिए। (नः प्रजाभ्यः, नः पशुभ्यः) हमारी सन्तानों और हमारे पशुओं के लिए भी (अभयम् कुरु) अभयदान दीजिए तथा (शं कुरु) इन सबका कल्याण कीजिए।

भावार्थ यह है कि ईश्वर सर्वत्र व्यापक है और अपने नियमित कार्यकलापों को स्वभाव से ही कर रहा है। हमारी प्रभु से प्रार्थना है कि वह हमें, बाल-बच्चों को और पशुओं को भी निर्भय कर दे और इन सभी का कल्याण हो।

पद्यानुवाद

हे ईश्वर! इस सकल विश्व में, केवल आपका शासन है।
भूमि, सागर और गगन में, आपका ही अनुशासन है।।
निर्भयता का दान हमें दो, सदा निडर हो हम विचरें।
ऐसा स्थान न कहीं भी होवे, जाने से हम जहाँ डरें।।
सुख से बच्चे रहें हमारे, मंगल उनका कर दो प्रभुवर।
पशु भी निर्भय होकर विचरें, उन्हें भी होवे कहीं न डर।।

61. आलस्यहीन हो हम ज्ञानप्राप्ति में आनन्द लें।

अग्ने त्वं सुजागृहि वयं सुमन्दिषीमहि। रक्षा णो अप्रयुच्छन् प्रबुधे नः पुनस्कृधि।।

(देवता-अग्निः) यजु॰/4/14

अन्वय तथा सरलार्थ

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् (त्वं सुजागृहि) आप सदा जागरूक हैं, हमें भी जागरूक बनाइए, जिससे (वयं सुमन्दिषीमहि) हम आनन्दपूर्वक रह सकें। (अप्रयुच्छन् नः रक्ष) प्रभो! हमारी उपेक्षा न करते हुए हमें पूर्ण रक्षा प्रदान कीजिए। (नः पुनः प्रबुधे कृधि) हमें बारम्बार उत्तम ज्ञान की प्राप्ति के लिए समर्थ बनाइए।

भावार्थ यह है कि हम प्रभु-भक्ति द्वारा अपने अन्दर चेतना पैदा करें और आनन्दमय भगवान् के आनन्दरस का पान करें। हम प्रभु द्वारा सुरक्षित होकर निरन्तर अपने ज्ञान को बढ़ाते रहें।

पद्यानुवाद

ज्योतिःस्वरूप प्रभो सदा हम जागरूक बने रहें।
बन कर प्रमादी कोई भी हम नीच कर्म नहीं करें।।
शुभ कर्म कर आनन्द को हम प्राप्त ही करते रहें।
शुभ ज्ञान का संग्रह करें, अज्ञान से हटते रहें।।
आप हैं रक्षक हमारे, दुर्गुणों से बचाइए।
सन्मार्ग पर चलते रहें, सन्मार्ग हमको दिखाइए।।

62. चंचल मन शुभ संकल्प वाला हो।

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति दूरंगमम्।
ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।

(देवता–मनः) यजु॰/34/1

अन्वय तथा सरलार्थ

(यत् दैवम् दूरंगमम् मे मनः) हे जगदीश्वर! जो आत्मा का साधनभूत दूर–दूर तक जाने के स्वभाव वाला मेरा मन है, वह (जाग्रतः दूरम् उदैति) जागृत अवस्था में भी दूर–दूर भाग जाता है, (तथैव तद् उ सुप्तस्य एति) उसी प्रकार मेरी सुप्त दशा में भी वह दूर–दूर चला जाता है। ऐसा जो मेरा मन (ज्योतिषाम् एकम् ज्योतिः) ज्ञानेन्द्रियों का प्रेरक है और उन्हें अपने अनुसार चलाता है, वह (शिवसंकल्पम् अस्तु) उत्तम संकल्पों अर्थात् भावनाओं एवं विचारों वाला हो।

पद्यानुवाद

आत्मसाधन मन जो मेरा, दूर–दूर है भागता।
जागते भी और सोते दौड़ता–फिरता सदा।।
ज्ञानेन्द्रियों का जो प्रवर्तक, ज्योतियों का ज्योति जो।
संकल्प शुभ करता रहे, यह मन मेरा कलुषित न हो।।
हे ईश! ऐसी शक्ति दो, मैं मन को वश में कर सकूँ।
वश में करके मन को अपने, आनन्दमय! आनन्द लूँ।।

63. प्रातः उठकर कर्म करो शुभ।

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रं हुवेम।।

(देवता-अग्न्यादयः) यजु॰/34/34

अन्वय तथा सरलार्थ

(प्रातः अग्निम्) हम प्रातःकाल प्रकाशस्वरूप परमेश्वर को, (प्रातः इन्द्रम्) प्रातःकाल उत्तम ऐश्वर्य को, (प्रातः मित्रा-वरुणा) प्रातःकाल प्राण और उदान को, (प्रातः अश्विना) प्रातःकाल अध्यापक और उपदेशक को, (हवामहे) प्राप्त करें और उन्हें ग्रहण करें। (प्रातः भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिम्) प्रातःकाल ही हम सेवन करने योग्य अपने भाग, भोग्य और धन को तथा वेद के रक्षक को और (प्रातः सोमम् उत रुद्रम् हुवेम) प्रातःकाल ही सोमादि औषधियों तथा जीवात्मा को ग्रहण करें अर्थात् आत्मा की उन्नति के कार्य भी करें।

पद्यानुवाद

प्रातः उठें, सबसे प्रथम हम ध्यान प्रभु का हीं करें।
ज्योतिःस्वरूप प्रभु से हम ले ज्योति को निज मन भरें।।
ऐश्वर्य शुभ की कामना हो, शुद्ध प्राण-उदान हों।
अध्यापकों-उपदेशकों का, प्रात ही आह्वान हो।।
पुष्टिकारक जो हमारा भाग हो, सोचें उसे।
प्रात उसको ही बुलावें, वेद-ज्ञान हो जिसे।।
उस वेद-रक्षक से हमारा ज्ञान बढ़ता जाएगा।
ज्ञान के आलोक से उज्ज्वल हृदय हो जाएगा।।
हम सोम आदिक औषधों का प्रात ही सेवन करें।
और आत्मोद्धार-पथ पर भी सतत बढ़ते चलें।।

64- स्वावलम्बन सफलता का स्त्रोत है।

स्वयं वाजिंस्तन्वं कल्पयस्व स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व। महिमा ते अन्येन न सन्नशे।।

(देवता-विद्वान्) यजु॰/23/15

अन्वय तथा सरलार्थ

(वाजिन्) हे ज्ञान के इच्छुक (तन्वम् कल्पयस्व) अपने शरीर को व्यायाम, संयम तथा उत्तम भोजन आदि द्वारा स्वयं शक्तिशाली बना। (स्वयं यजस्व) अपने आप विद्वानों की संगति और पूजा करके ज्ञान प्राप्त कर। (स्वयं जुषस्व) उनकी सेवा का कार्य स्वयं कर। (ते महिमा) कहीं तेरा महत्त्व (अन्येन न सन्नशे) किसी अन्य द्वारा नष्ट न हो जाए।

अर्थात् यदि तू परावलम्बी होकर इन कर्मों को स्वयं नहीं करेगा तो तू स्वस्थ एवं ज्ञानी नहीं बन सकेगा और लाभ दूसरे ही उठा ले जाएँगे।

पद्यानुवाद

हे ज्ञान के इच्छुक मनुज यदि चाहते हो ज्ञान को।
देह पहले पुष्ट कर लो, पाओगे कल्याण को।।
ज्ञान पाने के लिए कर संग तू विद्वान् का।
सेवा स्वयं तू उनकी कर ले, त्याग कर अभिमान का।।
जब तू स्वयं इस कार्य में, संकल्प कर लग जाएगा।
निश्चित ही होगी उन्नति तव, ज्ञान को भी पाएगा।।
आलस्य कर यदि अन्य किसी से कार्य तू करवाएगा।
नष्ट होगी महिमा तेरी, सफलता नहीं पाएगा।।
कर्त्तव्य अपने जो निभाते, तज प्रमाद को सर्वथा।
वीरजन वे सफल हो, निज महिमा बढ़ाते सर्वदा।।

65. विद्वान् पथ-प्रदर्शक बनें।

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानां रातिरभि नो निवर्तताम्। देवानां सख्यमुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्र तिरन्तु जीवसे।।

(देवता-विद्वांसः) यजु॰/25/15

अन्वय तथा सरलार्थ

(देवानां भद्रा सुमतिः) विद्वानों का कल्याणकारी परामर्श, (ऋजूयतां देवानां रातिः) और सरल कर देनेवाले विद्वानों की विद्यादान की प्रवृत्ति (नः अभि निवर्तताम्) हमारी ओर बढ़े और हमें प्राप्त हो। (वयं देवानां सख्यम् उपसेदिमा) हम विद्वानों की मित्रता को प्राप्त करें और (देवाः नः जीवसे आयुः प्र तिरन्तु) विद्वान् हमारी दीर्घायु के लिए हमारा पथ-प्रदर्शन करें।

पद्यानुवाद

कल्याणकार :सम्मति विद्वज्जनों से नित मिले।
ऐसी सुशिक्षा वे हमें दें, सारल्य जीवन में खिले।।
श्रद्धा तथा तिस्नेह का उनसे सदा व्यवहार हो।
निज ज्ञान ने हेतु वे हमको सदा तैयार हों।।
विद्वज्जनों मित्रता, हमको सदा मिलती रहे।
उनकी सुविद से हमारी, आयु भी बढ़ती रहे।।
हे ईश! ज्जनों का संग हम करते रहें।
सत्कर्मियों संग से हम पाप से बचते रहें।।

66. इन्द्र हम में पूर्ण सामर्थ्य भर दें।

यावती द्यावापृथिवी यावच्च सप्त सिन्धवः वितस्थिरे।
तावन्तमिन्द्र ते ग्रहमूर्जा गृह्णाम्यक्षितं मयि गृह्णाम्यक्षितम्।।
(देवता-इन्द्रः) यजु॰/38/26

अन्वय तथा सरलार्थ

(इन्द्र) हे परमैश्वर्यशाली परम पराक्रमी प्रभो! (यावती द्यावापृथिवी) जितना बड़ा द्युलोक और जितनी विस्तृत यह भूमि है, (यावत् च सप्त सिन्धवः वितस्थिरे) और जहाँ तक गतिशील नदियों और सागरों का विस्तार है, (तावन्तम् ते अक्षितं ग्रहम् ऊर्जा गृह्णामि) उतना ही विस्तृत तेरा स्थायी रहनेवाला सामर्थ्य और तेरी शक्ति को मैं ग्रहण कर लूँ। (मयि अक्षितम् गृह्णामि) मैं इस सामर्थ्य और ऊर्जा को सदा अपने पास बनाए रखूँ और कभी इसमें कमी न आने दूँ, ऐसी प्रार्थना है।

पद्यानुवाद

भूतल तथा द्युलोक का, जितना कहीं विस्तार है।
सागरों नदियों की गति का, भी जो यह प्रस्तार है।।
दीजिए सामर्थ्य उतना शक्ति भी उतनी मिले।
ऐश्वर्यशाली इन्द्र मम जीवन सदा फूले-फले।।
शक्ति पाऊँ आपसे, फिर स्थायी इसको कीजिए।
मुझमें समाए शक्ति॰ सब वह, सामर्थ्य ऐसा दीजिए।।

67. अन्दर ही तुम ढूँढ़ो प्रभु को, बुद्धि में वह मिलता है।

वेनस्तत् पश्यन्निहितं गुहा सद् यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्।
तस्मिन्निदं सञ्च विचैति सर्वम् स ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु।।

(देवता-परमात्मा) यजु॰/32/8

अन्वय तथा सरलार्थ

(यत्र विश्वम् एकनीडम् भवति) जिसमें जाकर यह सम्पूर्ण विश्व एक आश्रय वाला हो जाता है, अर्थात् जिसमें सम्पूर्ण जड़-चेतन समा जाते हैं, (तत् गुहा निहितम्) उस चेतना स्वरूप को, जो कि बुद्धि अथवा गुप्त कारण में स्थित है और जो (सत्) नित्य रहनेवाला है, उसे (वेनः) ज्ञानी विद्वान् मनुष्य (पश्यत्) ज्ञानदृष्टि से देखता है। (तस्मिन् इदं सर्वम् सम् एति) उसी परब्रह्म में यह सब जगत् समा जाता है और (वि एति) उसी से प्रकट होता है। (सः विभूः) वह सर्वव्यापक परमात्मा (प्रजासु ओतः प्रोतः च) सब उत्पन्न हुए पदार्थों में ऐसे घुला मिला है, जैसे दूध में मक्खन या तिलों में तेल होता है।

पद्यानुवाद

प्रलयकाल में जिसके अन्दर, सृष्टि सारी समा जाती।
सृजनकाल में जिससे सृष्टि पुनः, नए रूप में आ जाती।।
चर-अचर का नीड वही है, सृष्टि रचना करता है।
संकेत से उसके सकल विश्व नियमबद्ध हो चलता है।।
विद्वान् उसी को देखते निज बुद्धि के अन्दर सदा।
मिलती उन्हें ही है निरन्तर आनन्द की सब सम्पदा।।
वह सत्स्वरूप है, एक रस है, प्रलय में रहता वही।
सिमटता संसार उसमें, उस सदृश कोई नहीं।।
फिर उसी से प्रकट होते सूर्य-चन्द्रादिक लोक सब।
सृष्टि के प्राणी जन्मते, तारकित होता है नभ।।
सब सृष्टि में वह रम रहा है, ओतप्रोत है इस तरह।
दूध में मक्खन हो जैसे, तिल में तेल हो जिस तरह।।

68- स्वस्थ हों नयन, हृदय, मन।

यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वाऽतितृण्णम् बृहस्पतिर्मे तद्दधातु। शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः।।

(देवता–बृहस्पतिः) यजु॰/36/2

अन्वय तथा सरलार्थ

(यत् मे चक्षुषः हृदयस्य मनसः वा छिद्रम्) जो मेरी आँख, मेरे हृदय अथवा अन्तःकरण की न्यूनता है, (तत् बृहस्पतिः मे दधातु) उस कमी को सभी चराचर का स्वामी परमेश्वर मेरे लिए पूर्ण कर दे। (यः भुवनस्य पतिः) जो इस विश्व का रक्षक है, वह (नः शम् भवतु) हमारे लिए कल्याणकारी हो, अर्थात् हमारा सब प्रकार से मंगल करे और हमें दुःख–दर्द से बचाए।

पद्यानुवाद

हे विश्व के स्वामी बृहस्पति, कल्याण हम सब का करो।
जो–जो त्रुटि हममें प्रभो, शीघ्र ही उसको हरो।।
आँख में यदि दोष कुछ हो, या हृदय में न्यूनता।
उसको हटा दो हे प्रभो, दो शुद्धता और पवित्रता।।
अन्तःकरण के दोष भी सब दूर कर दो हे प्रभो।
सद्गुण सभी इसमें बसाकर पूर्ण स्वस्थ इसे करो।।
सब जगत् के आप स्वामी, हम हैं सेवक आपके।
मंगल हमारा कीजिए, बच जाएँ हम सन्ताप से।।

69. शान्ति-सौख्य विश्व में कर दो।

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वं शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि।।

(देवता-ईश्वरः) यजु॰/36/17

अन्वय तथा सरलार्थ

(द्यौः शान्तिः) हे ईश्वर! प्रकाशमय ऊपर का लोक हमारे लिए शान्तिदायक हो, (अन्तरिक्षं शान्तिः) मध्य का लोक भी शान्तिदायक हो, और (पृथिवी शान्तिः) यह भूमि भी शान्ति देनेवाली हो। (आपः शान्तिः) जल भी शान्ति दे, (ओषधयः शान्तिः) जड़ी-बूटियाँ शान्तिदायक हों, (वनस्पतयः शान्तिः) बड़े-बड़े पेड़ भी शान्ति देनेवाले हों, (विश्वेदेवाः शान्तिः) जड़ देवता और विद्वान् लोग भी शान्ति देनेवाले हों, (ब्रह्म शान्तिः) ज्ञान भी शान्तिदायक हो, (सर्वम् शान्तिः) सभी से हमें शान्ति प्राप्त हो और (शान्तिः एव शान्तिः) शान्ति भी शान्तिकारक हो, श्मशान की शान्ति न हो। (सा शान्तिः मा एधि) वह शान्ति मुझे प्राप्त हो और मेरी उन्नति में सहायक हो।

पद्यानुवाद

हे शंकर! चहुँ शान्ति बसाओ।
शान्तिपूर्ण सब विश्व बनाओ।।

सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, सितारे,
चमक रहे जो प्यारे-प्यारे,
अन्तरिक्ष में वायु, मेघ जो,
और चमकती बिजली भी हो।
सबसे ही प्रभु शान्ति दिखाओ।
हे शंकर! चहुँ शान्ति बसाओ।।

शान्तिराज्य हो इस भूतल पर,
जल-प्रवाह भी होवें हितकर,
ओषधियाँ सारे रोग भगाएँ,
वनस्पति-गण भी शान्ति बढ़ाएँ,
शान्ति-सौख्य इनसे बरसाओ।
हे शंकर! चहुँ शान्ति बसाओ।।

जड़-चेतन जो देव हमारे,
करें शान्ति ही मिलकर सारे,
ज्ञानिजन का ज्ञान दे शान्ति,
नहीं बढ़ाए कहीं भी भ्रान्ति,
सबको उत्तम पथ दिखलाओ।
हे शंकर! चहुँ शान्ति बसाओ।।

शान्ति-शान्ति सब ओर विराजे,
जिससे सुख-साधन सब साजे,
व्याकुलता का राज्य नहीं हो,
कोई पीड़ित कहीं नहीं हो,
रोग-शोक सब दूर भगाओ।
हे शंकर! चहुँ शान्ति बसाओ।।

70- वाणी बने पवित्र हमारी।

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती। यज्ञं वष्टु धिया वसुः।।

(देवता-इन्द्रः) सामः/189

अन्वय तथा सरलार्थ

(इन्द्र) हे परमैश्वर्यशाली भगवन् (नः सरस्वती पावका) हमारी वाणी पवित्र हो तथा पवित्र करनेवाली हो। (वाजेभिः वाजिनीवती) अनेक प्रकार के ज्ञानों को ग्रहणकर बलशाली हो जाए। यह वाणी (यज्ञं वष्टु) अपने द्वारा ज्ञानादि यज्ञ का विस्तार करे (धिया वसुः वष्टु) बुद्धि तथा कर्म द्वारा उत्तम धन प्राप्त करने का साधन बने।

भावार्थ यह है कि हम अपनी वाणी से कभी गन्दे शब्द न बोलें और ज्ञान का संचय करें, जिससे यह बलशाली होकर अज्ञान को नष्ट करे तथा ऐश्वर्य को बढ़ाए।

पद्यानुवाद

हे इन्द्र! हमारी वाणी को परमपवित्र श्रेष्ठ दो कर।
विविध ज्ञानें को प्राप्त करे, अज्ञान-तिमिर को लेवे हर।।
वाणी में वह शक्ति दीजिए, सभी प्रभावित हों जिससे।
अरिदल को भी वश में कर ले, मित्रभाव उनमें सरसे।।
विद्या का विस्तार करे यह, और अविद्या कर दे दूर।
वाणी की ही शक्ति से हम, धन-सम्पद् से हों भरपूर।।
उपकार की साधक हो यह वाणी, नहीं किसी का बुरा करे।
दीनों-दुखियों की पीड़ा को, मृदुवचनों से शीघ्र हरे।

71- ज्ञान-ज्योति से प्रभुवर चमका दो।

अया पवस्य धारया यया सूर्यमरोचयः। हिन्वानो मानुषीरपः।।

(देवता-पवमानः सोमः) साम०/493

अन्वय तथा सरलार्थ

(पवमान सोम) हे पवित्रता प्रदान करनेवाले, आनन्ददायक और सबके प्रेरक प्रभो! आप (अया धारया पवस्व, यया सूर्यमरोचयः) उस ही धारा से हमें भी पवित्रकर दीजिए, जिससे आपने सूर्य में तेज देकर उसे चमका दिया है। हे सोम! आप ही (मानुषीः अपः हिन्वानः) मनुष्यों को शुभ कर्मों में प्रेरित कर उनकी बुराइयों को दूर कर देते हैं और उन्हें पवित्र बना देते हैं।

पद्यानुवाद

पावनकर्त्ता! पावन कर दो, सोमदेव उस धारा से।
सूर्यदेव में ज्योति जगाई, प्रभु! तुमने जिस धारा से।।
कैसा निर्मल सूर्य चमकता, निर्मल हमें भी कर दो प्रभुवर।
आपसे प्रेरित होकर हम सब, श्रेष्ठ कर्म ही करें निरन्तर।।
मानवमात्र के मन में बैठे, आप प्रेरणा करते हैं।
उसी प्रेरणा से सब सज्जन, पाप-कर्म से डरते हैं।।
हमें प्रेरणा ऐसी दे दो, जीवन में शुभ कर्म करें।
हो पवित्र इस जग में हम भी, सूर्य-सदृश ही नित चमकें।।

72. रक्षक है प्रभु भक्तजनों का।

अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम्। शतम्भवास्यूतिभिः।।

(देवता–इन्द्रः) साम॰/684

अन्वय तथा सरलार्थ

(नः जरितॄणां सखीनाम् अभी सु अविता) हे इन्द्र! आप हम स्तुतिकर्त्ताओं और मित्र बने हुओं की सभी ओर से अच्छी प्रकार रक्षा करते हैं। हे इन्द्र परमैश्वर्यशाली! आप (ऊतिभिः शतम् भवासि) अपने रक्षा–साधनों से सैंकड़ों रूप धारण करते हैं।

भावार्थ यह है कि प्रभु अपने उपासकों और सत्कर्मियों की सब ओर से सभी प्रकार से और सैंकड़ों साधनों से रक्षा करते हैं। यह तभी संभव होता है जब हम उस इन्द्र के उपासक बनकर उसको सर्वस्व समर्पण कर दें।

पद्यानुवाद

हे इन्द्र! तुम शक्तिशाली, सब साधनों के पुञ्ज हो।
आनन्द के हो स्रोत भी तुम, अभयता के कुञ्ज हो।।
आपसे कर मित्रता जो, करते सदैव उपासना।
आपका कर ध्यान मन से, छोड़ते जो कुवासना।।
उस भक्तगण के आप रक्षक हैं सदा सब काल में।
उनकी रक्षा आप करते, विपद् में दुष्काल में।।
रक्षा–साधन अनगिनत हैं, आपके यह सत्य है।
अल्पज्ञ हम नहीं समझ पाते हैं उन्हें यह तथ्य है।।
सब साधनों से कीजिए रक्षा हमारी हे प्रभो।
स्तोता हैं हम सब आपके, भजनीय आप ही हैं विभो।।

73. हम प्रभु-भक्ति को न बेचें।

महे च न त्वाद्रिवः पराशुल्काय दीयसे। न सहस्राय वज्रिवो न शताय शतामघ।।

(देवता-इन्द्रः) साम०/291

अन्वय तथा सरलार्थ

(अद्रिवः) हे मेघसदृश आनन्द के बरसाने वाले इन्द्र (त्वा महे शुल्काय) तू अधिक धन के बदले (न दीयसे) नहीं दिया जा सकता। (वज्रिवः) हे कठोर शासन वाले (शतामघ) और अनन्त ऐश्वर्यवाले इन्द्रदेव (न सहस्राय, न अयुताय, न च शताय) तू हजार के बदले, दस लाख के बदले और इससे भी सौ गुणा अधिक के बदले देने योग्य नहीं है।

भावार्थ यह है कि प्रभु की भक्ति को बड़े-से-बड़े लोभ के आने पर भी त्यागना उचित नहीं है, क्योंकि जितनी भी धन-सम्पत्ति है, वह उस परमैश्वर्यशाली इन्द्र की तुलना में तुच्छ है। यदि उस इन्द्र को मना लिया तो हम स्वतः वैभवशाली हो सकते हैं।

पद्यानुवाद

आनन्ददायक इन्द्र की भक्ति से हम निज मन भरें।
ऐश्वर्यशाली उस प्रभु का नियम से चिन्तन करें।।
सौ, हजारों या कि लाखों द्रव्य पाकर भी कभी।
उसके भजन से मुँह न मोड़ें, मिल पाएगी शान्ति तभी।।
ऐश्वर्यमद में डूबकर जो भूल जाता ईश को।
धन नष्ट हो जाता है जब, रो पीटता निज शीश को।।
इस हेतु प्रभु को मत भुलाओ, चाहे धन कितना मिले।
धनहीन भी, जो भक्त हैं, रहते सदा फूले-फले।।

74. इन्द्र की मित्रता भयनाशिका है।

सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते। त्वामभि प्र नो नुमो जेतारमपराजितम्।।

(देवता–इन्द्रः) साम॰/828

अन्वय तथा सरलार्थ

(इन्द्र) हे परमैश्वर्यशाली तथा शक्तिशाली इन्द्र (ते सख्ये वाजिनः) तेरी मित्रता में रहनेवाले हम लोग बलशाली हों। (शवसस्पते) हे अनन्त बल के स्वामी हम तेरी मित्रता में (मा भेम) कभी किसी से न डरें। (जेतारम् अपराजितम्) सब पर विजय प्राप्त करनेवाले और किसी से न हारनेवाले (त्वाम् अभि प्र नो नुमः) तुझे हम बारंबार प्रणाम करते हैं और तेरी शरण में आते हैं।

पद्यानुवाद

ऐश्वर्यशाली भी तथा जो शक्तिशाली इन्द्र है।
सब शक्तियों का है पति, सबसे बड़ा देवेन्द्र है।।
उस इन्द्र से कर मित्रता, हम सब भी बलशाली बनें।
आत्मशक्ति के धनी हों, हम किसी से न डरें।।
है शत्रुओं का वह विजेता, होता पराजित वह नहीं।।
उसकी तुलना में बली भी, कोई न मिल सकता कहीं।।
हम भक्तिभाव से इन्द्र को हैं नमन करते बारबार।
शरण उसकी शक्तिमय है, दुख से करती वह है पार।।

75. प्रभो ! प्रशंसनीय बना दो।

त्वमङ्ग प्रशंसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम्। न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः।।

(देवता-इन्द्रः) साम॰/247

अन्वय तथा सरलार्थ

(अङ्ग) हे मित्र (शविष्ठ) अति बलयुक्त तू (देवः) दिव्य गुणों वाला है, अतः (मर्त्यम्) मुझ मनुष्य को (प्रशंसिषः) प्रशंसित बना दे। हे (मघवन् इन्द्र) उत्तम धन के दाता दुःखों के नाशक प्रभो (त्वत् अन्यः मर्डिता न अस्ति) तुझसे भिन्न कोई दूसरा पूर्ण सुखी करनेवाला नहीं है, (ते वचः सत्यम् ब्रवीमि) मैं यह बात तुम्हें पूर्णतः सच्ची कह रहा हूँ अर्थात् इसमें कोई सन्देह नहीं है, कि तुम ही पूर्णतः सुख देनेवाले हो।

पद्यानुवाद

हे इन्द्र! आप बलिष्ठ हैं, सच्चे हमारे मित्र हैं।
गुण दिव्य अनन्त हैं आपके, अरु आप दिव्य चरित्र हैं।।
हम मर्त्य सारे घूमते हैं, जन्म-मृत्यु के चक्र में।
हमको प्रशंसित कीजिए, हम मृत्यु से भी न डरें।।
श्रेष्ठ धन के आप दाता, और दुख-भंजक भी आप।
आपकी भक्ति से भगवन्, मिटते सभी हैं पाप-ताप।।
आप-सा सुख देनेवाला कौन है संसार में?
यह सत्य उक्ति है प्रभो, सुख कीजिए परिवार में।।

76. आप ही हमारे सुखदाता पिता और माता हैं।

त्वं हिं नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ। अथा ते सुम्नमीमहे।।

(देवता-पवमानः सोमः) साम॰/117

अन्वय तथा सरलार्थ

(वसो त्वं हि नः पिता) हे सबको बसाने वाले परमात्मन्, आप ही हमारे पिता हैं, रक्षक हैं, (शतक्रतो त्वं माता बभूविथ) हे बहुत प्रकार से मन को प्रेरणा देनेवाले प्रभो! आप हमारी माता भी हैं। आप अनेक शुभ संकल्पों को मन में प्रेरित कर हमारा निर्माण करते हैं। (अथा ते सुम्नम् ईमहे) इसलिए हम अधिकारपूर्वक आपसे सुख की कामना करते हैं।

अर्थात् पिता और माता होने के कारण आप हम पुत्र-पुत्रियों को सुखी कर दीजिए।

पद्यानुवाद

सबको बसाते हो वसो, तुम ही पिता इस विश्व के।
माता भी तुम निर्माण करती, प्रेरणाएँ विविध दे।।
संकल्प शुभ हो प्रेरते, हे शतक्रतो मन में सदा।
उन प्रेरणाओं से ही पाते, हम सदा सुख-सम्पदा।।
हे पिता, हे प्यारी माता, आपसे हम चाहते।
कल्याण सबका कीजिए, वर आपसे यह माँगते।।
सत्पुत्र बन सत्पुत्रियाँ बन, सन्मार्ग पर हम चलें।
हम कुकर्मों से बचें, सत्कर्म ही प्रतिदिन करें।।

77. सूर्यसदृश मैं चमक उठा मेधा को जब प्राप्त किया।
अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रह। अहं सूर्य इवाजनि।।

(देवता-इन्द्रः) साम॰/152

अन्वय तथा सरलार्थ

(अहम् इत् हि) मैंने निश्चयपूर्वक (पितुः ऋतस्य मेधाम् परिजग्रह) उस पालक परमात्मा से सत्य प्रकट करनेवाले वेद की धारणावती बुद्धि को सभी ओर से ग्रहण कर लिया है, अर्थात् मैंने वेद की शिक्षाओं को अपनी बुद्धि में बिठा लिया है। इसलिए (अहं सूर्यः इव अजनि) मैं सूर्य के समान प्रकाशमय बन गया हूँ।

अर्थात् जैसे सूर्य अपने प्रकाश से अन्धकार को मिटा देता है, उसी प्रकार मैं भी अज्ञान, भ्रान्तियों और सन्देहों को नष्ट कर सच्चे ज्ञान का प्रचारक बन गया हूँ।

पद्यानुवाद

इस सृष्टि का है जो पिता, जो है सभी को पालता।
वेद-विद्या विश्व में देकर, उसे विस्तारता।।
उस ईश से ही प्राप्त की मेधा है मैंने वेद की।
यह सत्य ज्ञान है दे रही, अतिश्रेष्ठ है सबसे यही।।
इस बुद्धि को कर प्राप्त मैं, उज्ज्वल हुआ हूँ ज्ञान से।
सूर्यसम मैं चमकता हूँ, शोभित हुआ विज्ञान से।।
सूर्य जैसे है तिमिर को दूर करता तेज से।
वैसे ही भ्रम को है मिटाती, बुद्धि ज्ञान-विवेक से।।
इस बुद्धि के बल से निरन्तर भ्रांतियाँ दूर भगाऊँगा।
सन्देह पूर्ण मिटाऊँगा, सबको ही सत्य सिखाऊँगा।।

78. संघर्ष में इन्द्र ही परम सहायक है।

योगे योगे तवस्तरं वाजे वाजे हवामहे। सखाय इन्द्रमूतये।।

(देवता-इन्द्रः) साम॰/163

अन्वय तथा सरलार्थ

(सखायः) हे मित्रो (योगे योगे) प्रत्येक सभा-समुदाय में और (वाजे वाजे) प्रत्येक युद्ध-स्थल और संघर्ष में (तवस्तरम्) इन्द्र के उत्कृष्ट बल और (इन्द्रम्) परमैश्वर्य का हम (हवामहे) आह्वान करते हैं, अर्थात् उसे अपनाने का प्रयास करते हैं। प्रभो! कृपा कीजिए हमें अपना बल और ऐश्वर्य प्रदान कर सभा-समाज में तथा संघर्ष में विजयशील बनाइए।

पद्यानुवाद

हे मित्रगण! परमैश्वर्यशाली, इन्द्र को मैं साथ रख लूँ।
और उसके सहाय से ही, सर्वत्र सफल मैं हो सकूँ।।
चाहे सभा-समुदाय हो, या युद्ध-स्थल भी हो कहीं।
इन्द्र मेरे साथ यदि है, निश्चित विजय मेरी वहीं।।
इन्द्र का आह्वान करता हूँ, सदा शुभ काम में।
दृढ़ता मुझे दे इन्द्र ही, संघर्ष के भी धाम में।।
इन्द्र की ही मित्रता मैं चाहता संसार में।
इन्द्र को ही रक्षा-हेतु, स्मरण करूँ व्यवहार में।।

79. वेद के अनुकूल ही जीवन बनाना चाहिए।

न कि देवा मिनीमसि न क्या योपयामसि। मन्त्रश्रुत्यं चरामसि।।

(देवता-इन्द्रः) साम॰/176

अन्वय तथा सरलार्थ

(देवाः न कि इनीमसि) हे विद्वानो! हम उपासक लोग तनिक भी हिंसा नहीं करें, (न कि आ योपयामसि) नाहीं किसी को धोखा दें और (मन्त्रश्रुत्यं चरामसि) हम वेद द्वारा बताए गए शुभ कर्मों का ही आचरण करें।

भावार्थ यह है कि हमारा आचरण ऐसा उत्तम होना चाहिए कि हमारे कारण कोई भी पीड़ित न हो और नाहीं हम किसी को धोखा दें या ठगें। हमारा पूर्ण जीवन वेद के अनुसार निष्कलंक होना चाहिए।

पद्यानुवाद

हे देवगण, विद्वज्जनो, हिंसा कभी हम न करें।
छल-कपट से दूर रहकर, सद्भाव ही मन में भरें।।
धोखा किसी को हम न दें, पीड़ित न कोई हमसे हो।
सुख-शान्ति से जीवें सभी, आशिष हमें यह आप दो।।
वेद-मन्त्रों से कथित ही शुभ सदा व्यवहार हो।
और जीवन का हमारे श्रेष्ठ ही आचार हो।।
ईश्वर! हमें दो शक्ति ऐसी, वेद के पथ पर चलें।
संसार में ही स्वर्ग रचकर, मुक्ति-पथ पर हम बढ़ें।।

80. प्रातः उठें, हम ईश का चिन्तन सदा प्रतिदिन करें।

अभित्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः। ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः।।

(देवता-इन्द्रः) साम०/233

अन्वय तथा सरलार्थ

(शूर) हे पराक्रमी इन्द्र (त्वा अदुग्धा धेनवः इव नोनुमः) जैसे दूध से पूर्ण न दुही हुई गौएँ दूध पिलाने या देने के लिए खड़ी हो जाती हैं, ठीक उसी प्रकार हम अन्य कार्यों को छोड़ कर पूर्ण भक्ति-भाव से आपको प्रणाम करते हैं। हे इन्द्र) परमैश्वर्यशाली भगवन् (जगतः ईशानम्) चेतन जगत् के शासक तथा (तस्थुषः ईशानम्) जड़-जगत् के भी शासक और (स्वर्दृशम्) सूर्यादि तेजस्वी वस्तुओं को भी चमकाने वाले आपको हम (नोनुमः) बारंबार प्रणाम करते हैं।

भावार्थ यह है कि जैसे न दुही हुई गौएँ प्यार से दूध देती हैं, और दूध दूहने वाला उनके सामने झुक जाता है, उसी प्रकार हम विनम्र होकर इन्द्र से सब कामनाएँ पूर्ण करें।

पद्यानुवाद

हे इन्द्र! शासक विश्व के तुम हो पराक्रम के धनी।
हे इन्द्र! तुम्हारी शक्ति से ही सृष्टि सारी है बनी।।
वह सूर्य भी तो है चमकता लेकर तुम्हीं से ज्योति को।
चेतन तथा जड़ वस्तुएँ कहतीं तुम्हारी शक्ति को।।
विश्व के हो तुम ही शासक, इसमें तुम्हीं हो रम रहे।
हे शक्तिशाली इन्द्र! तुम ही पुरातन, तुम नए।।
हम भक्तिभाव से नमन करते, तुमको ईश्वर इस तरह।
दुग्धपूर्ण हैं गौएँ देतीं, दूध अपना जिस तरह।।

81- ऋतुएँ हैं रमणीय, हैं हितकर भी।

वसन्त इन्नु रन्त्यो ग्रीष्म इन्नु रन्त्यः। वर्षाण्यनु शरदो हेमन्तः शिशिरः इन्नु रन्त्यः।।

(देवता–ऋतवः) साम॰/616

अन्वय तथा सरलार्थ

(वसन्तः इत् नु रन्त्यः) वसन्त ऋतु अवश्य ही रमणीय है, (ग्रीष्मः इत् नु रन्त्यः) गर्मी की ऋतु भी निश्चय से रमणीय है, (वर्षाणि अनु शरदः हेमन्तः शिशिरः इत् नु रन्त्यः) वर्षा ऋतु और उसके बाद शरद्, हेमन्त और शिशिर ऋतुएँ भी रमणीय ही हैं।

भावार्थ यह है कि ऋतुओं का क्रम से आना और जाना प्राणिमात्र के सुख के लिए ही है। वसन्त यदि फूलों से शोभायमान है, तो ग्रीष्म फलों से। ग्रीष्म ऋतु ही बादल बनाकर वर्षा ऋतु को जल बरसाने में सहायता करती है और तभी विविध अन्न और घास-पात होते हैं। सर्दी में ठंढक में ही हिम पर्वतों पर जमती है और उसी से गर्मियों में नदियाँ चलकर पानी की कमी को पूर्ण करती हैं। इस प्रकार सभी ऋतुएँ हमारे लिए रमणीय हैं। हमें किसी ऋतु के आने पर व्याकुल नहीं होना चाहिए और उसके अनुसार ही जीवन की सामग्री जुटाकर उस ऋतु में आनन्द से रहना चाहिए।

पद्यानुवाद

वसन्त ग्रीष्म अरु वर्षा ऋतु का।
शरद् हेमन्त अरु शिशिर-वायु का।।
चक्कर चलता रहता क्रम से।
बढ़ती ऋतुएँ आगे-आगे।।

वसन्त ऋतु है अति सुहानी।
यह तो है फूलों की रानी।।
ग्रीष्म ऋतु है खूब तपाती।
पर यह ऋतु ही मेघ बनाती।।

फिर है वर्षा ऋतु आ जाती।
भूमि जिससे है सरसाती।।
अन्न-खाद्य सब इससे मिलते।
सब जीवों के जीवन चलते।।

है शरद् ऋतु भी खूब सुहानी।
हेमन्त-शिशिर की अन्य कहानी।।
गिरिशिखरों पर हिम बरसातीं।
स्थायी जल-भण्डार बनातीं।।

इसी से नदियाँ चलती जातीं।
गर्मी में भी जल पहुँचातीं।।
इसी हेतु सब ऋतुएँ सुन्दर।
रमणीय भी हैं और हैं भी हितकर।।

ऋतुओं से मत होना व्याकुल।
रमणीय सभी हैं, सभी है सुखकर।।

८२- रोग न हो, कुविचार नहीं हो।

अपामीवामपस्रिधमप सेधत दुर्मतिम्। आदित्यासो युयोतना नो अंहसः।।

(देवता-आदित्याः) साम॰/396

अन्वय तथा सरलार्थ

(आदित्यासः) हे सूर्य की किरणों के समान ज्ञान से पूर्ण तेजस्वी मनुष्यो! (अमीवाम् अपसेधत) रोग को नष्ट कर दो, (स्रिधम् अपसेधत) बाधक चोरादि कुकर्मियों को दूर भगा दो, (दुर्मतिम् अपसेधत) दुष्ट विचारों को नष्ट कर दो और (नः अंहसः युयोतन) हमें पापों से पृथक् कर दो।

भावार्थ यह है कि हमारे बीच में ऐसे विद्वान् और ज्ञानी लोग होने चाहिएँ जो हमें रोगों से बचा सकें और स्वास्थ्य के मार्ग पर चला सकें। इसी प्रकार वे विद्वान् भी होने चाहिएँ जो हमें सत्प्रेरणाएँ देकर चोरी आदि के कुकर्मों से हटा दें तथा चोरी आदि करनेवालों से बचने का ढंग भी बता दें। ऐसे विद्वान् हमें पापों से हटाकर सन्मार्ग की ओर ले जा सकते हैं।

पद्यानुवाद

आदित्य-सम विद्वज्जनो, हैं ज्ञान के भण्डार आप।
वह विधि हमको बता दो, नष्ट हों सब रोग-ताप।।
स्वस्थ जीवन हम बिताएँ, नीरोग रह जीवें सदा।
आपके उपदेश से लें, स्वास्थ्य की शुभ-सम्पदा।।
चोर-डाकू हैं जो पापी, उनसे बचने की कला।
हमको सिखा दो श्रेष्ठजन, जिससे सभी का हो भला।।
हम दुर्विचारों से बचें, शिक्षित हमें ऐसा करो।
सब पापवृत्ति दूर कर के, पुण्य-पथ पर ले चलो।।

83. कल्याणमयी मेधा हम पाएँ।

मेधामहं प्रथमां ब्रह्मण्वतीं ब्रह्मजूतामृषिष्टुताम्। प्रपीतां ब्रह्मचारिभिर्देवानामवसे हुवे।।

(देवता-मेधा) अथर्व॰/6/108/2

अन्वय तथा सरलार्थ

(अहम् देवानाम् अवसे) मैं अपनी दिव्य शक्तियों और ज्ञानेन्द्रियों की रक्षा के लिए (प्रथमाम् ब्रह्मण्वतीम्, ब्रह्मजूताम्, ऋषि-स्तुताम्, ब्रह्मचारीभिः प्रपीताम्) सबसे श्रेष्ठ, वेद-ज्ञान में लगी रहनेवाली, ईश्वर का ध्यान करनेवाली, तत्त्वज्ञानियों, ऋषियों से प्रशंसित और ब्रह्मचारियों से अच्छी प्रकार पान की गई या ग्रहण की गई (मेधाम् हुवे) विवेकशील और धारणावती बुद्धि का आह्वान करता हूँ।

भावार्थ यह है कि हम उस विवेकशील बुद्धि को प्रभु के ध्यान से प्राप्त करने का यत्न करें, जो हमें प्रभुभक्ति, वेद के स्वाध्याय, विचारशीलता और आत्मसंयम में लगा सके, जिससे हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ और मन सन्मार्ग पर चलते हुए हमारा कल्याण ही करें, हानि न पहुँचाएँ।

पद्यानुवाद

मन तथा ज्ञानेन्द्रियों की शक्ति-वृद्धि के लिए।
शुभ गुणों, शुभ प्रेरणाओं की भी सिद्धि के लिए।।
उस श्रेष्ठ मेधा बुद्धि की मैं कर रहा हूँ कामना।
जो वेद के शुभ ज्ञान-हेतु मन में भर दे भावना।।
जो ईश की भक्ति में मेरे मन को नित प्रेरित करे।
जो आनन्दमय उस स्रोत से आनन्दरस मन में भरे।।
हे ईश! मेधा दो वही, जिसकी प्रशंसा ऋषि करें।
ब्रह्मचारी पान करके ज्ञाननिधि जिससे भरें।।
मैं विवेकी बन निरन्तर, सत्यासत्य को जान लूँ।
क्या भद्र या कि अभद्र है, मैं पूर्णतः पहचान लूँ।।

84- ब्रह्म मुझे शुभ ज्ञान दो।

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह। ब्रह्मा मा तत्र नयतु ब्रह्मा ब्रह्म दधातु मे।।

(देवता-ब्रह्मा) अथर्व॰/19/43/8

अन्वय तथा सरलार्थ

(यत्र ब्रह्मविदः) जहाँ परमात्मा को जाननेवाले ऋषि-मुनि (दीक्षया) व्रत धारणकर (तपसा सह) सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास आदि द्वन्द्वों को सहन करते हुए (यान्ति) पहुँचते हैं, (ब्रह्मा मा तत्र नयतु) सर्वव्यापक तथा सर्वज्ञानमय परमेश्वर मुझे वहीं पहुँचा दे। (ब्रह्मा मे ब्रह्म दधातु) वह ज्ञान का भण्डार परमेश्वर मेरे अन्दर ऐसे ज्ञान का संचार कर दे।

भावार्थ यह है कि व्रतधारण करने और द्वन्द्वों को सहन करने की क्षमता रखनेवाले लोग ही आनन्दस्वरूप प्रभु के आनन्दरस का पान कर सकते हैं, अन्य नहीं। अतः तपस्वी बनना अनिवार्य है।

पद्यानुवाद

दृढ़ संकल्प का व्रत लेकर के, घोर तपस्या करनेवाले।
ब्रह्मज्ञानी जहाँ हैं जाते, सब द्वन्द्वों को सहनेवाले।।
मुझको भी तुम वहीं ले चलो, करो अनुग्रह हे जगदीश।
ज्ञान करा दो मुझको अपना, ब्रह्म तुम्हीं हो तुम हो ईश।।
करके ज्ञान तुम्हारा मैं भी, मुक्तिधाम को प्राप्त करूँ।
आनन्दरूप प्रभु तेरे अन्दर, हो स्वच्छन्द सदा विचरूँ।।

85. ऋषियों द्वारा बने राष्ट्र को पूर्ण तुम सहयोग दो।

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे। ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातम्, तदस्मै देवाः उप सं नमन्तु।।

(देवता–राष्ट्रं बलमोजश्च) अथर्व॰/19/41/1

अन्वय तथा सरलार्थ

(स्वर्विदः ऋषयः) आत्मानन्द के ज्ञाता और अनुभवकर्त्ता तत्त्व–ज्ञानियों ने (भद्रम् इच्छन्तः अग्रे तपः दीक्षाम् उपनिषेदुः) संसार के कल्याण की कामना से सबसे पूर्व तप और फिर कार्य को सम्पन्न करने का व्रत लिया। (ततः राष्ट्रम् बलम् ओजः च जातम्) तब कहीं जाकर राष्ट्र का निर्माण हुआ और उसमें बल और तेजस्विता उत्पन्न हुई। (देवाः तत् अस्मै सं नमन्तु) ऐसे राष्ट्र के प्रति विद्वानों को झुकना चाहिए, इसका सत्कार करना चाहिए और इसकी वृद्धि के लिए सहयोग देना चाहिए।

पद्यानुवाद

तत्त्वज्ञ थे जो सौख्य के, थे आत्म–सुख में लीन जो।
वे ऋषीश्वर चाहते थे विश्व के कल्याण को।।
करके तपस्या पूर्व ही तब व्रत लिया उपकार का।
तप और दीक्षा से बना यों राष्ट्र का आकार था।।
उस राष्ट्र में बल था भरा, फिर ओज भी उसको दिया।
इस भांति ऋषियों ने स्वयं आदर्श राष्ट्र को था किया।।
विद्वज्जनो! इस राष्ट्र को सहयोग देते तुम रहो।
मिलकर नमन इसको करो, इस राष्ट्र की जय–जय कहो।।

८६. काल अश्व की करें सवारी, संयमी जो होते नर-नारी।

कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः। तमा रोहन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा।।

(देवता-कालः) अथर्व॰/19/53/1

अन्वय तथा सरलार्थ

(सप्तरश्मिः) सात लगामों वाला, (सहस्राक्षः) हजारों धुरों को चलानेवाला, (अजरः) कभी भी बूढ़ा न होनेवाला, (भूरिरेताः) बहुत ही शक्तिशाली (कालः अश्वः वहति) कालरूपी घोड़ा संसार को ढो रहा है अथवा चला जा रहा है। (तम् विपश्चितः कवयः आरोहन्ति) इस पर ज्ञानी और दूर तक की सोचनेवाले बुद्धिमान् ही सवारी करते हैं। (विश्वानि भुवनानि तस्य चक्रा) सम्पूर्ण लोक-लोकान्तर उसके पहियों के समान हैं।

भावार्थ यह है कि काल का घोड़ा, जो बड़ा शक्तिशाली और सदा जवान रहनेवाला है, वह सभी विश्व को घसीटे जा रहा है। सभी लोक-लोकान्तर उसकी शक्ति के साथ भागे रहे हैं। यह विश्व का रथ अनेक धुरों और पहियों वाला है। काल का घोड़ा सात लगामों से वश में होता है। सात लगामें हैं- पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, एक मन और एक बुद्धि। बुद्धिमान् और क्रान्तदर्शी लोग इन्द्रियों, मन और बुद्धि को वश में करके काल को अपने वश में रखकर उसकी सवारी करते हैं और इसी के द्वारा वे मोक्षधाम तक पहुँच जाते हैं।

पद्यानुवाद

काल का घोड़ा खींच रहा है, विश्व के सारे भुवनों को।
विश्व का रथ है सहस्रधुरों का, चलता काल के वश में हो।।
है शक्तिशाली अजर यह घोड़ा, केवल वश में होता उनके।
मन, ज्ञानेन्द्रिय, बुद्धि लगामें, वश में रहती हैं जिनके।।
संयमशील, क्रान्तदृष्टि जो, इसकी करते खूब सवारी।
इसी अश्व को वश में करते, करें मुक्तिपथ की तैयारी।।
पूर्णकाम वही हैं होते, मुक्तिधाम तक जाते हैं।
क्षणभर भी जो वृथा न खोते, ब्रह्मानन्द को पाते हैं।।
जिनके वश में नहीं इन्द्रियाँ, मन के पीछे जो चलते।
काल की शक्ति उन्हें कुचलती, जन्ममरण में वे फिरते।।

87- रोगरहित हो देश हमारा।

उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः।
दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम।।

(देवता-भूमिः) अथर्व॰/12/1/62

अन्वय तथा सरलार्थ

(पृथिवि) हे भूमिमाता (अस्मभ्यं प्रसूताः ते उपस्थाः अनमीवाः अयक्ष्माः) हमारे लिए तेरे द्वारा उत्पन्न की गई जो तेरी प्रदेशरूपी गोदियाँ हैं, वे हमारे लिए रोगरहित, क्षयरहित और आरोग्यवर्धक हों। (नः आयुः दीर्घम्) हमारी उमर लम्बी हो। (प्रतिबुध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम) जागरूक और सावधान रहते हुए हम लोग तेरे लिए धन, बल, तन आदि की भेंट चढ़ाने वाले बनें।

भावार्थ यह है कि भूमि पर हमारे निवास-स्थान रोगरहित और आरोग्यवर्धक होने चाहिएँ और स्वस्थ जीवन प्राप्त कर लम्बी उमर जीना चाहिए। हमें देश के कल्याण और सुरक्षा के लिए सर्वदा तैयार रहना चाहिए और इसकी उन्नति और रक्षा के लिए हमें तन, मन, धन भेंट चढ़ाने के लिए भी उद्यत रहना चाहिए।

पद्यानुवाद

हे भूमिमाता! गोदियाँ तेरी हो मंगलमय सदा।
रोग-क्षय तुझ में न हों, नीरोग हों जन सर्वदा।।
दीर्घ जीवन हम जिएँ, होवें निराश न हम कभी।
सावधान रहें सदा हम, तेरे स्नेही हों सभी।।
सब प्रकार से हम तुझे सम्पन्न ही करते रहें।
संकट यदि तुझ पर कहीं हो, दूर उसको हम करें।।
तन, मन तथा धन भेंट कर, रक्षा सदा तेरी करें।
हे मातृभूमि! पुत्र तेरे दीन होकर न मरें।।

४४. देवनगरी यह अयोध्या ब्रह्मज्योति से भरी।

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या। तस्यां हिरण्यय: कोश: स्वर्गो ज्योतिषावृत:।।

(देवता-ब्रह्मप्रकाशनम्) अथर्व॰/10/2/31

अन्वय तथा सरलार्थ

(देवानाम्) ज्ञानेन्द्रियों तथा मनरूपी देवताओं की नगरी (अष्टाचक्रा) योग के आठ अंगरूपी चक्रों वाली (नवद्वारा) दो आँखें, दो नथुने, एक मुँह, दो कान, मलद्वार तथा मूत्रेन्द्रिय- इन नौ दरवाजों वाली (अयोध्या) अन्य प्राणियों से अजेय है, अर्थात् अन्य जीव इसमें प्रवेश नहीं कर सकते। (तस्यां हिरण्यय: कोश:) इसी नगरी में प्रकाशमय चेतनस्वरूप जीवात्मा रूपी कोश विद्यमान है, जो (स्वर्ग:) सुख की कामना करता हुआ (ज्योतिषा आवृत:) ब्रह्म की ज्योति से ढका हुआ है।

भावार्थ यह है कि शरीररूपी दृढ़ नगरी में ही जीवात्मा रह रहा है और आनन्द की कामना करता हुआ वह इसी शरीर में आनन्दमय ब्रह्म को प्राप्त कर सकता है।

पद्यानुवाद

देवरूप जो इन्द्रियाँ हैं, उनकी मगरी है यही।
योग के जो अंग आठों, चक्र इस के हैं वही।।
नौ द्वार इसके हैं खुले, फिर भी अजेय सदा यही।
अन्य प्राणी कोई भी, इस बीच आ सकता नहीं।।
इस देह में ही आत्म-ज्योति, चेतना है बिखेरती।
पूर्ण सुख की कामना से, देह को है प्रेरती।।
पूर्ण ज्योतिरूप प्रभु से, जीव यह है ढका हुआ।
उस ब्रह्म के ही दर्शनों से, दुख मिटेंगे सर्वथा।।

८९. प्रेम-प्रीति से हम रहें, द्वेषभाव को त्याग दें।

सहृदयं सामनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः। अन्यो अन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या।।

(देवता-सौमनस्यम्) अथर्व॰/3/30/1

अन्वय तथा सरलार्थ

प्रभु कहते हैं कि हे मनुष्यो! (वः) तुम सबको मैं (सहृदयं सामनस्यम् अविद्वेषं कृणोमि) समान हृदय वाला, समान विचारों वाला और द्वेष-भाव से रहित करता हूँ। (जातं वत्सम् अघ्न्या इव) उत्पन्न हुए बछड़े को जैसे गाय प्यार करती है, उसी प्रकार (अन्यः अन्यम् अभिहर्यत) तुम लोग एक-दूसरे से प्यार करो।

भावार्थ यह है कि परमपिता प्रभु की शिक्षा है कि हम सब के हृदय मिले हों अर्थात् परस्पर सहानुभूति हो, हमारे विचार एक जैसे हों और हम आपस में द्वेष न करें। हममें ऐसा प्रेम हो जैसा गाय अपने सद्यः-उत्पन्न बच्चे से दिखाती है।

पद्यानुवाद

हे मनुष्यो! मैं तुम्हें उपदेश देता हूँ यही।
दिल-मन तुम्हारे हों मिले, द्वेषभाव न हो कहीं।।
बन करके हितचिन्तक परस्पर, प्रेम से रहते रहो।
सुख-दुख में साथी तुम बनो, मत किसी को दुःख दो।।
तुममें परस्पर स्नेह हो, संवेदना हो इस तरह।
नवजात बछड़े को दिखाती स्नेह धेनु जिस तरह।।
प्रेम से रहते हुए संसार में सुख पाओगे।
द्वेष करने से परस्पर तुम सभी मिट जाओगे।।

90- मैं सभी का प्रिय बनूँ।

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु। प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये।।

(देवता-ब्रह्मणस्पतिः) अथर्व॰/19/62/1

अन्वय तथा सरलार्थ

हे ज्ञान के स्वामी ब्रह्मणस्पते! (मा देवेषु प्रियं कृणु) मुझे विद्वानों, ब्राह्मणों में प्रिय बना दो, (मा राजसु प्रियं कृणु) मुझे क्षत्रियों में प्रिय बना दो, (उत शूद्रे उत अर्ये पश्यतः सर्वस्य प्रियं कृणु) शूद्रों में, वैश्यों में और जितने भी देखने वाले प्राणी हैं, उन सब में मुझे प्रिय बना दो। अर्थात् मेरा सभी से ऐसा व्यवहार हो कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा सभी प्राणिजगत् मुझसे प्यार करें।

पद्यानुवाद

हे ज्ञान के स्वामी प्रभो, ऐसी कृपा हम पर करो।
हम प्रिय बनें सब प्राणियों के, श्रेष्ठ गुण हममें भरो।।
ज्ञानियों के प्रिय बनें, हम क्षत्रियों के प्रिय बनें।
वैश्य-जन के प्रिय बनें, हों शूद्र-जन में प्रिय घने।।
जो भी देखे हमको भगवन्! स्नेह ही हमसे करे।
देखकर हमको घृणा का भाव न निज मन भरे।।
प्रेम सबसे हम करें, अरु प्रिय वचन बोलें सदा।
मित्रभाव से सबको देखें, हमसे करें सब मित्रता।।

91. हे वेदरक्षक, दिव्य शक्ति को जगा दे विश्व में।
उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान् यज्ञेन बोधय। आयुः प्राणं प्रजां पशून् कीर्तिं यजमानं च वर्धय।।

(देवता-ब्रह्मणस्पतिः) अथर्व॰/19/63/1

अन्वय तथा सरलार्थ

(ब्रह्मणस्पते) हे वेद के रक्षक विद्वान् पुरुष, (उत्तिष्ठ) सावधान होकर खड़ा हो जा और (देवान् यज्ञेन बोधय) विद्वानों को तथा जड़ देवताओं और विषयग्राहिणी ज्ञानेन्द्रियों को दान, पूजा और श्रेष्ठ संगति से जगा दे, तथा (यजमानम् आयुः, प्राणं, प्रजाम्, पशून् कीर्तिं च वर्धय) यजमान को, श्रेष्ठ कर्म करनेवाले को और उसकी आयु, प्राणशक्ति, सन्तान, पशु धन और यश को बढ़ा दे।

भावार्थ यह है कि ज्ञानी व्यक्ति यजमान को यज्ञादि शुभ कर्म करने के लिए प्रवृत्त कर उसे इन्द्रियसंयम, आयु बढ़ाने, प्राणशक्ति में वृद्धि लाने, सन्तान को उत्तम बनाने, पशुओं को ठीक पालने और यश को फैलाने की विधियाँ बताएँ।

पद्यानुवाद

वेद-ज्ञान के रक्षक ज्ञानी, जागरूक बन जाना तुम।
यज्ञकर्म से दिव्यशक्तियाँ, यजमानों में जगाना तुम।।
श्रेष्ठ कर्म के उत्सुक हैं जो, यजमानों को बढ़ाना तुम।
आयु, प्राण, प्रजा, पशु, कीर्ति बढ़े यथा, यह सिखाना तुम।।
हे ज्ञानी! तुम ज्ञान के रक्षक, ज्ञान का जग में कर विस्तार।
नष्ट करो अज्ञान-तिमिर को, ज्ञान-ज्योति का हो संचार।।

92. ज्ञान जो पाऊँ, नहीं भुलाऊँ।

पुनरेहि वाचस्पते देवेन मनसा सह। वसोष्पते नि रमय मय्येवास्तु मयि श्रुतम्।।

(देवता-वाचस्पतिः) अथर्व॰/1/1/2

अन्वय तथा सरलार्थ

(वाचस्पते) हे वाणी के पुष्ट करनेवाले भगवन्, (देवेन मनसा सह पुनः एहि) द्योतमान मनन क्रिया के साथ फिर मेरे हृदय में आओ, अर्थात् मैं गम्भीरतापूर्वक ध्यान करता हुआ आपको मन में स्थिर कर लूँ। (वसोः पते) हे सभी को बसानेवालों में श्रेष्ठतम प्रभो! (नि रमय) मुझे ज्ञान में रमण करवाओ अर्थात् मैं प्राप्त ज्ञान को अपने मन में स्थिर कर लूँ, जिससे (मयि श्रुतम् मयि एव अस्तु) मुझ द्वारा प्राप्त किया हुआ जो ज्ञान है, वह मुझ में ही बना रहे, मैं उसे नष्ट न कर बैठूँ।

पद्यानुवाद

वाणी के हे स्वामी भगवन्! दिव्यशक्ति से मन में आओ।
मेरी मनन-शक्ति को प्रभुवर, मन में आ कर पुनः बढ़ाओ।।
सबको वास दिलाने वाले, वसोष्पते! तुम कृपा करो।
ज्ञान-प्राप्ति में रमण करूँ मैं, प्राप्त ज्ञान स्थायी कर दो।।
भूल न जाऊँ उत्तम बातें, मन में सदा विचारूँ मैं।
वेद के उत्तम ज्ञान को पाकर, मन में उसको धारूँ मैं।।

९३. मंगलकारी हों जल सारे।

शं नो आपो धन्वन्याः शमु सन्त्वनूप्याः। शं नः खनित्रिमा आपः शमु याः कुम्भ आभृताः शिवाः नः सन्तु वार्षिकीः।।

(देवता-अपां भेषजम्) अथर्व॰/1/6/4

अन्वय तथा सरलार्थ

(धन्वन्याः आपः नः शम्) निर्जल प्रदेश का जल हमारे लिए कल्याणकारी हो, (उ अनूप्याः शं सन्तु) और जलीय प्रदेश का भी जल हितकर हो, (खनित्रिमाः आपः शम्) खोदकर बनाए गए कुओं आदि से प्राप्त जल भी कल्याणकारी हो, (याः कुम्भे आभृताः उ वार्षिकीः नः शिवाः सन्तु) जो जल घड़े में भरा गया है और जो वर्षा से प्राप्त हो, वे सभी प्रकार के जल हमारे लिए मंगलकारी ही हों।

भावार्थ यह है कि इन सभी प्रकार के जलों को हम इस प्रकार से प्रयोग में लाएँ कि इनसे कोई हानि न हो और ये हमारे स्वास्थ्य को बढ़ाने वाले ही हों।

पद्यानुवाद

मरुस्थलों का जल हो हितकर; उनसे लाभ उठायें हम।
जलमय भूमि के भी जल को, मंगलमय ही बनाएँ हम।।
भूमि खोदकर जो जल पाएँ, वे भी हमको हितकर हों।
कुम्भादिक में भरे जो जल हों, वे भी हमको सुखकर हों।।
जिस जल को बादल बरसाएँ, वह भी मंगलमय जल हो।
जितने जल हैं, स्वास्थ्य हमें दें, कुछ भी नहीं अमंगल हो।।
गुण-अवगुण सब जलों के जानें, ठीक प्रयोग करें उनका।
जल के रोगों से बच जाएँ, इसी से होगा स्वास्थ्य भला।।

94- खूब कमाओ, पर उस धन को ठीक स्थान पर खर्च करो।

शतहस्त समाहर सहस्रहस्त सं किर। कृतस्य कार्यस्य चेह स्फातिं समावह।।

(देवता-समृद्धिप्राप्तिः) अथर्व॰/3/24/5

अन्वय तथा सरलार्थ

(शतहस्त) हे सैंकड़ों प्रकार से धन जुटानेवाले (समाहर) खूब धन कमा और फिर (सहस्रहस्त सं किर) हजारों प्रकार से उसे उपयुक्त स्थानों पर लगा दे। (च इह कृतस्य कार्यस्य स्फातिम् आवह) और इस संसार में किए हुए और करने योग्य कार्य को बढ़ाता चला जा।

भावार्थ यह है कि धन खूब कमाना चाहिए और उसे उपयुक्त स्थानों में खर्च भी करना चाहिए तथा कमाने के साधनों को बढ़ाते जाना चाहिए।

पद्यानुवाद

दीन रहना पाप है, मत दीन-हीन रहो कभी।
मैं ईश कहता हूँ तुम्हें, धन-धान्य तुम पाओ सभी।।
पर परिग्रह त्याग कर, लाना उसे व्यवहार में।
बन कर धनी तुम धन बिखेरो, भोग में, उपकार में।।
तुम सैंकड़ों विधियों से धन का, यत्न से संचय करो।
पर हजारों रूप में उसको सदा तुम व्यय करो।।
उपकार के जो कार्य हों, उनमें लगा दो सम्पदा।
दीन-दुखियों की मिटा दो, स्नेह से सब आपदा।।
इस तरह धन को बढ़ाओ, दीनता हरते रहो।
दीनता अपनी मिटाओ, परहित तथा करते रहो।।

95- ऋणहीन होकर हम जिएँ, ऋणहीन होकर हम मरें।

अनृणा अस्मिन्ननृणाः परस्मिन् तृतीये लोके अनृणाः स्याम। ये देवयानाः पितृयाणाश्च लोकाः सर्वान् पथो अनृणा आक्षियेम।।

(देवता–अग्निः) अथर्व॰/6/117/3

अन्वय तथा सरलार्थ

(अस्मिन् अनृणाः) इस लोक में हम ऋण से रहित हों, (परस्मिन् अनृणाः) पहले लोक में भी हम कर्जदार न रहें और (तृतीये लोके अनृणाः स्याम) हम तीसरे लोक में भी ऋण से मुक्त रहें। (ये लोकाः देवयानाः पितृयानाः च) जो लोक मुक्ति के हैं और जो गृहस्थ जीवन से सम्बन्धित हैं (सर्वान् पथः अनृणा आक्षियेम) उन लोकों को जाते हुए हम सभी मार्गों पर कर्ज से छुटे रहें, अर्थात् चाहे हम मुक्ति को प्राप्त करने के रास्ते पर चलें या पारिवारिक जीवन बितायें, हम कर्ज़दार नहीं रहें।

विशेष : यहाँ 'लोक' शब्द 'अवस्था' या 'स्थान' का वाचक है।

पद्यानुवाद

इस लोक में परलोक में भी ऋणहीन हों हम सर्वथा।
गत जन्म के भी ऋण उतारें, ऋणहीन ही होवें सदा।।
देवयान के पथिक बन यदि मुक्ति की करें साधना।
ऋणहीन होकर ही चलें, यह ही हमारी कामना।।
पितृयान के हों पथिक, तो भी न ऋण का भार हो।
सब ऋण उतारें फिर चलें, जिससे सुखद संसार हो।।
देवऋण, ऋषिऋण तथा यदि पितृऋण भी शेष हो।
उनको उतारें ध्यान से, पथ में नहीं कुछ क्लेश हो।।

९६. नमस्कार हो ज्येष्ठ ब्रह्म को, जिसका शासन चलता है।

यो भूतञ्च भव्यञ्च सर्वं यश्चाधितिष्ठति। स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः।।

(देवता-आत्मा) अथर्व॰/10/8/1

अन्वय तथा सरलार्थ

(यः भूतम् च भव्यम् च अधितिष्ठति) जो बीते हुए और आनेवाले समय में भी विश्व पर शासन करता है, (यः च सर्वम् अधितिष्ठति) और जो सभी चर-अचर को अपने शासन में रखे हुए है, (यः च केवलम् स्वः) और जो स्वयं आनन्दस्वरूप है, (तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः) उस सबसे उत्कृष्ट सर्वव्यापक परमेश्वर को हम नमस्कार करते हैं।

भावार्थ यह है कि एकमात्र परमेश्वर ही सब कालों में संसार के सभी पदार्थों का अधिष्ठाता है। सभी वस्तुएँ उसी के नियंत्रण में है। सब पर शासन करता हुआ भी वह आनन्दस्वरूप है। ऐसे ब्रह्म को प्रतिदिन श्रद्धा से नमन करना चाहिए।

पद्यानुवाद

जो हो चुका, जो हो रहा, होगा भविष्य में जो कभी।
ज्येष्ठ ब्रह्म से सब नियन्त्रित, शक्ति में उसके सभी।।
ज्येष्ठ ब्रह्म में ही परम आनन्द का भी स्रोत है।
यह विश्व जड़-चेतन सभी, उसमें ही ओत-प्रोत है।।
उस ब्रह्म को हम नमन करते, माँगते उससे यही।
सौख्य हम सब को मिले, आनन्दमय हो यह मही।।

97. ईश्वर को जो जान है लेता, नहीं मृत्यु से डरता वह।

अकामो धीरो अमृतः स्वयम्भू रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः।
तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम्।।

(देवता–आत्मा) अथर्व॰/10/8/44

अन्वय तथा सरलार्थ

(अकामः) जो कामनाओं से रहित, (धीरः) सब दशाओं में समान रहने वाला है, जो (अमृतः) कभी मरता नहीं, (स्वयम्भूः) अपनी ही शक्ति से सदा रहने वाला है अर्थात् जिसको पैदा करनेवाला कोई नहीं है, जो (रसेन तृप्तः) अपने आनन्दमय स्वरूप से तृप्त है, और (कुतः चन ऊनः न) कहीं से भी जिसमें कोई कमी नहीं है, अर्थात् जो सर्वथा पूर्ण है, (तम् एव धीरम् अजरम् युवानम् आत्मानम् विद्वान् मृत्योः न बिभाय) मनुष्य सब दशा में एकरूप रहनेवाले, कभी बूढ़ा न होनेवाले और सदा जवान रहनेवाले उसी परमात्मा को जानकर ही मृत्यु से भय नहीं खाता, अर्थात् जो उस परब्रह्म को जान लेता है, वह जन्म-मरण के चक्कर से छूट कर परमानन्द को प्राप्त कर लेता है।

पद्यानुवाद

नहीं चाह है जिसकी कुछ भी, सदा एकरस रहता है।
जिसकी मृत्यु कभी न होती, जो अमृत कहलाता है।।
जिसकी सत्ता सदा स्वयं है, होता जिसका जन्म नहीं।
रस से तृप्त है, त्रुटिहीन जो, सब का स्वामी एक वही।।
उस धीर, अजर अरु युवा ईश का, ज्ञान जो करता है विद्वान्।
मरने का भय है उसे न रहता, मुक्ति से पाता कल्याण।।
उस प्रभु को यदि जान सकें हम, हो जाएँगे अजर-अमर।
आनन्दपूर्ण करेगा हमको, सबका स्वामी परमेश्वर।।

९८. कोई काम न हो सकता है वरुण से छिपकर कभी कहीं।

यस्तिष्ठति चरति यश्च वञ्चति यो निलायं चरति यः प्रतङ्कम्। द्वौ निषद्य यन्मन्त्रयेते राजा तद्वेद वरुणस्तृतीयः।।

(देवता-वरुणः) अथर्व॰/4/16/2

अन्वय तथा सरलार्थ

(यः तिष्ठति, यः चरति, यः च वञ्चति) जो मनुष्य खड़ा है, चल रहा है और जो किसी को ठग रहा है, (यः निलायम् यः च प्रतङ्कम् चरति) जो छिपकर कार्य करता है तथा जो सबके सम्मुख चलता या कार्य करता है, (द्वौ निषद्य यत् मन्त्रयेते) दो व्यक्ति बैठकर जो परस्पर सलाह करते हैं, (तत् तृतीयः राजा वरुणः वेद) वह सब उनसे भिन्न सबका शासक वरुण, वरणीय परमेश्वर, जानता है, अर्थात् उससे छिपकर कोई भी कार्य नहीं हो सकता।

पद्यानुवाद

जो है खड़ा, जो चल रहा , या जो ठगी है कर रहा।
छिपकर जो करता कार्य है, प्रत्यक्ष करता डर रहा।।
दो जन यदि एकान्त में भी कर रहे हैं मंत्रणा।
देखता उनको वरुण है, चहुँ ओर उसकी यंत्रणा।।
उस वरुणदेव से गुप्त कोई कार्य हो सकता नहीं।
प्रत्येक के कर्मों का साक्षी है वरेण्य वरुण वही।।
इसलिए दुष्कर्म को करना नहीं तुम भूलकर।
शुभ कर्म ही करते रहो, सुख देंगे निश्चित वरुणवर।।

९१ सब ओर से हम अभय हों।

अभयं मित्रादभयममित्राद् अभयं ज्ञाताद् अभयं परोक्षात्। अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु।।

(देवता-इन्द्रः) अथर्व॰/19/15/6

अन्वय तथा सरलार्थ

(मित्रात् नः अभयम्, अमित्रात् अभयम्) हे इन्द्र! हमें मित्र से भी कोई डर न हो और शत्रु से भी भय न हो। अर्थात् हमारा मित्र ऐसा हो जो कभी भी धोखा न दे और शत्रु से सावधान रहें। (अभयं ज्ञाताद् अभयं परोक्षात्) सम्मुख आए व्यक्ति से भय न हो और छिपे हुए से भी हमें डर न लगे। (नः नक्तम् अभयम् दिवा अभयम्) हमारे लिए रात भी भयरहित हो और दिन में भी कोई भय न हो। (सर्वाः आशाः मम मित्रम् भवन्तु) सभी दिशाएँ ही हमारी मित्र बन जाएँ।

भावार्थ यह है कि हमारा परस्पर ऐसा व्यवहार हो कि सभी लोग हमारे मित्र बन जाएँ और हमें किसी से भी डर न लगे।

पद्यानुवाद

हम मित्र से भी न डरें और शत्रु से भी हो न भय।
प्रत्यक्ष हो या परोक्ष कोई, सबसे हम होवें अभय।।
रात में हम न डरें, अरु दिवस में भी भय न हो।
सब दिशाएँ भयरहित हों, हम परस्पर मित्र हों।।
अभयता का दान हम सबको हे ईश्वर दीजिए।
स्नेह से मिलकर रहें, प्रेरित सभी को कीजिए।।

100. कल्याणमयी धन-दौलत पावें, नाशनहारी ना अपनावें।

या मा लक्ष्मीः पतयालुरजुष्टा अभिचस्कन्द वन्दनेव वृक्षम्।
अन्यत्रास्मत् सवितंस्तामितो धाः हिरण्यहस्तो वसु नो रराणः।।

(देवता-लक्ष्मीः) अथर्व॰/7/115/2

अन्वय तथा सरलार्थ

(या लक्ष्मीः पतयालुः, अजुष्टा) जो धन-दौलत पतित कर देनेवाली है और जिसका उपयोग नहीं हो रहा हो तथा (वन्दना वृक्षम् इव मा अभिचस्कन्द) जैसे अमरबेल वृक्ष पर बढ़ती हुई उसके रस को चूसकर सुखा देती है, उसी प्रकार जो मुझसे चिपट कर मेरा विनाश कर रही है, (सवितः ताम् अस्मत् इतः धाः) हे सबके प्रेरक प्रभो! उस लक्ष्मी को हमारे पास से दूर कर दो और उसके बदले (हिरण्यहस्तः नः वसु रराणः भव) तेजस्वी चमकते हुए हाथों से हमें बसाने वाला, हमारा कल्याण करनेवाला धन दो।

भावार्थ यह है कि बुरे ढंग से कमाया धन और ढेर जमा किया हुआ धन मनुष्य का पतन कर देता है। हमारे पास परिश्रमपूर्वक कमाया हुआ धन आना चाहिए और वह ऐसा होना चाहिए जिससे जीवन सुखपूर्वक चल सके और हम अच्छी प्रकार रह सकें।

पद्यानुवाद

धन-सम्पदा जिससे पतन हो, काम में आए नहीं।
जो वृक्ष के रस-पान हेतु, हो वृक्ष से लिपटी हुई।।
अमरबेल सदृश जो लक्ष्मी, नष्ट करे आधार को।
वह लक्ष्मीं हमसे दूर हो, नष्ट ही उसको करो।।
हे सबके प्रेरक देव सविता! सम्पदा वह दीजिए।
पोषण तथा पालन करे, सम्पन्न उससे कीजिए।।
शुभ कर्म से जो धन मिले, उसमें करें सन्तोष हम।
उज्ज्वल यह जीवन होगा उससे, चाहे धन वह होवे कम।।

101- शुभज्ञान देती वेदमाता लोक का परलोक का।

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्। आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्। मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्।।

(देवता–वेदमाता) अथर्व०/19/71/1

अन्वय तथा सरलार्थ

(मया वेदमाता स्तुता) मैंने ज्ञान की माता वेदवाणी की स्तुति की है, उसका गान किया है। (द्विजानाम् पावमानी) यह ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों को पवित्र करनेवाली वाणी है। हे विद्वानो! इसे (प्रचोदयन्ताम्) प्रचारित कीजिए, दूर–दूर तक फैला दीजिए। इसके द्वारा आप लोग (मह्यम् आयुः, प्राणं, प्रजां, पशुं, कीर्तिं, द्रविणं, ब्रह्मवर्चसम्) दीर्घायु, प्राणशक्ति, उत्तम सन्तान, पशुधन, यश, रुपया–पैसा और वेदज्ञान सभी कुछ समर्पित कर (ब्रह्मलोकम् व्रजत) मोक्षलोक में पहुँच जाओ अर्थात् परमानन्द प्राप्त करो।

भावार्थ यह है कि संसार की सभी वस्तुएँ वेदवाणी की सहायता से प्राप्त कर अन्त में सभी परमात्मा को समर्पित कर मुक्ति का आनन्द लेना चाहिए।

पद्यानुवाद

मैंने स्तुति की वेद की, माता है जो शुभ ज्ञान की।
वह वेदवाणी वाक् है, सर्वेश उस भगवान् की।।
विद्वज्जनो! इस वेदवाणी का करो प्रचार तुम।
विश्व में सब ओर ही, फैलाओ वेद-विचार तुम।।
यह वेदवाणी पावमानी, द्विजजनों की सर्वथा।
विप्र-क्षत्रिय-वैश्य सब, पाते इस से पवित्रता।।
आयुष्य, प्राण, प्रजा, द्रविण, पशुधन तथा धन दे यही।
वेदवाणी के सदृश कोई विश्व में वाणी नहीं।।
भगवान् को करके समर्पित सब वस्तुएँ संसार की।
मुक्ति देगी वेदवाणी, दे सीख निज उद्धार की।।
कामनाएँ पूर्ण करती, यह वेद वाणी है सभी।
स्वाध्याय इसका नित करें, त्यागें न इसको हम कभी।।

लेखक का संक्षिप्त परिचय

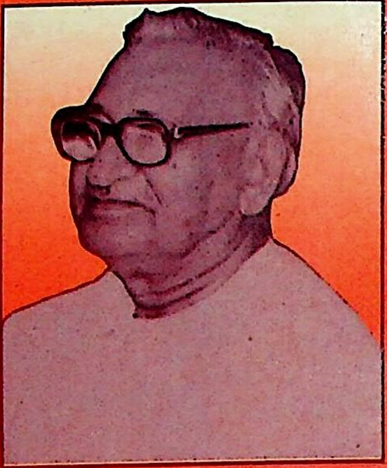

श्रुति-शतक प्रथम पुष्प के लेखक श्री वेदप्रकाश शास्त्री का जन्म जम्मू-काश्मीर राज्य स्थित कोटली, जिला मीरपुर (पाकिस्तान द्वारा अधिकृत क्षेत्र में) 10 अप्रैल 1920 को हुआ था। आपके पिता महाशय टेकचन्दजी और माता श्रीमती रामखेत्री देवी ने आपके शैशव-काल से ही वैदिक संस्कार देने आरम्भ कर दिए थे। माताजी तो महिला-आर्यसमाज के कई पदों पर कार्य करती रहीं। वैदिक संस्कृति की शिक्षा देने हेतु माता-पिता ने इन्हें 7 वर्ष की आयु में ही आचार्यप्रवर पं॰ मुक्तिराम, जो संन्यासी बनने पर स्वामी आत्मानन्द कहलाए, के चरणों में गुरुकुल पोठोहार, चोहा भक्ताँ जिला रावलपिण्डी में भेज दिया। वहाँ आर्ष पद्धति के अनुसार आपने शिक्षा प्राप्त की और पुनः गुरुकुल रावल, रावलपिण्डी तथा अन्य विद्यालयों में अध्यापन-कार्य करते हुए शास्त्री, प्रभाकर, एम॰ए॰ (संस्कृत), एम॰ए॰ (हिन्दी) एवं बी॰टी॰ की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। आप अप्रैल 1978 में दिल्ली के एक राजकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय से सेवानिवृत्त होकर भी अध्यापकों की गोष्ठियों में हिन्दी तथा संस्कृत के शिक्षा में मार्गदर्शन करते रहे। आप अनेक पुरस्कारों से पुरस्कृत हो चुके हैं, जिनमें से कुछ एक निम्नलिखित हैः-

(1) सन् 1939 में हैदराबाद आर्यसत्याग्रह में कारागार में रहने के कारण आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब तथा आर्यसार्वदेशिक सभा द्वारा अभिनन्दन पत्र दिए गए।

(2) सन् 1956 में "सुक्खू के बेटे" नामक एक समाजोत्थान परक कहानी पर राष्ट्रपति द्वारा पुरस्कार।

(3) सन् 1976 में अध्यापकों के श्रेष्ठ मार्गदर्शन के नाते राज्य-शिक्षा-संस्थान, दिल्ली की ओर से अभिनन्दन-पत्र।

(4) संस्कृत अकादमी, दिल्ली द्वारा मार्च 1993 में 'साहित्य-सम्मान' के रूप में पुरस्कृत एवं सम्मानित।

आर्यसमाज के विशिष्ट कार्यः- आर्यसमाज करोल-बाग, आर्यसमाज पटेलनगर, आर्यसमाज कीर्तिनगर में विभिन्न गतिविधियों तथा प्रचार कार्य में निरन्तर सहयोग। सन् 1967 में बिहार के अकाल-पीड़ित क्षेत्र सिमडेगा में जाकर वस्त्रादि के वितरण का कार्य।

—प्रकाशक